अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
अक्तूबर २०१६

प्रेम पर मनन-चिन्तन

विषय-सूची

सम्पादकीय ३

प्रेम पर मनन-चिन्तन
(श्रीमां के वचन)

'पुरोधा'

दैनन्दिनी ४६
एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार ४९
गरीब का पुण्य नरेन्द्र विद्यावाचस्पति ५३
प्रार्थना 'निराला' ५४
हमेशा 'उनको' अपने साथ लेकर उतरता हूं वन्दना ५५

मुखपृष्ठ—गुलाब
(ऋतम् उपाध्याय की पेंटिंग)
श्रीमां के अनुसार गुलाब के विभिन्न प्रकार भागवत प्रेम के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं।

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पांच वर्ष—८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

Divine Love

A flower reputed to bloom even in the desert.
(Spiritual significance and explanation given by the Mother)

Botanical Name: Punica granatum

सम्पादकीय—इस संसार में 'प्रेम' से बड़ी शक्ति सम्भवतः और कोई नहीं है। प्रेम के बिना संसार नहीं होता, प्रेम के बिना इस संसार को इसके अंधेरे से बाहर खींच नहीं निकाला जा सकता था। लेकिन आखिर यह 'प्रेम' है क्या? क्या है यह सबसे बड़ी उत्तोलक शक्ति जिसके बिना पृथिवी का पत्ता तक नहीं खड़कता? यह गूढ़ार्थों का गूढ़ार्थ है, यह 'महानतम रहस्य' है। इस अंक में हम श्रीमां के प्रदीप्तिकारक, प्रेरणादायक वचनों के प्रकाश में प्रेम की इस महान् शक्ति पर मनन-चिन्तन करने का प्रयास करेंगे। अपने एक वार्तालाप में श्रीमां ने कहा था :

'समस्त अस्तित्व तथा अनस्तित्व, वैयक्तिक तथा निर्वैयक्तिक—सभी के पीछे एक महान् रहस्य है, और वह है 'प्रेम'। दो चीजों या दो व्यक्तियों के बीच का प्रेम नहीं... बल्कि ऐसा 'प्रेम' जो सभी को अपने अन्दर समाये हुए है... और अद्‌भुत चीज यह है कि हर क्षण 'कृपा', 'हर्ष', 'प्रकाश', 'प्रेम' सभी चीजों में स्वयं को उंडेलते ही रहते हैं—अहंकार, अयोग्यता, अराजकता इत्यादि के होते हुए भी प्रेम 'प्रेम' होना कभी बन्द नहीं करता।'

हे मेरे मधुर स्वामी, कितनी तीव्रता के साथ मेरा प्रेम तेरे लिए अभीप्सा करता है।...

वर दे कि मैं तेरे दिव्य प्रेम के सिवा और कुछ न होऊं और यह प्रेम हर सत्ता में सशक्त और विजयी होकर जागे।

वर दे कि मैं प्रेम का विशाल चोगा बन जाऊं जो सारी धरती को ढके रहे, सभी हृदयों में प्रवेश करे, हर कान में आशा और शान्ति का तेरा दिव्य सन्देश गुनगुनाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ८३

एक पुरानी कैल्डियन कथा

बहुत, बहुत समय पहले, उस रेगिस्तान में, जो अब अरब है, पृथ्वी में परम 'प्रेम' को जगाने के लिए एक भागवत सत्ता ने अवतार लिया। जैसी कि आशा थी, मनुष्यों ने उसे सताया, उसे गलत समझा, उस पर शंका की, उसका पीछा किया। अपने आक्रमणकारियों के द्वारा घातक रूप से घायल हो, अपने काम को पूरा कर सकने के लिए वह एकान्त में शान्ति के साथ मरना चाहती थी, और चूंकि उसका पीछा किया जा रहा था, वह भाग गयी। अचानक उस विशाल रेगिस्तान में अनार की छोटी-सी झाड़ी प्रकट हुई। उद्धारक उसकी नीची शाखाओं में दुबक गया, ताकि वह अपना शरीर शान्ति से छोड़ सके; और तुरन्त वह झाड़ी आश्चर्यजनक रूप से फैल गयी, वह ऊंची हो गयी, चौड़ी हो गयी, गहरी और घनी हो गयी, जिससे कि जब पीछा करने वाले वहां से गुजरे तो उन्हें यह शंका तक न हुई कि जिसका वे पीछा कर रहे हैं वह यहां छिपा है, और वे अपने रास्ते हो लिये। बूंद-बूंद करके, धरती को उर्वर बनाता हुआ जब वह पुण्य रक्त गिरा, तो झाड़ी अलौकिक, लाल, बड़े-बड़े, पंखुड़ियों से भरपूर फूलों से लद गयी... मानों वे रक्त की असंख्य बूंदें हों।

यही वे फूल हैं जो हमारे लिए 'भागवत प्रेम' *(अनार के फूल को श्रीमां ने यह नाम दिया है)* को अभिव्यक्त करते और धारण करते हैं।

मधुर मां, आपने जो 'कैल्डियन' कहानी लिखी है, क्या उसका 'काली पूजा' के साथ कोई सम्बन्ध है?

हां, मेरे वत्स, क्योंकि काली पूजा के दिन मैं **हमेशा** "भागवत प्रेम" के फूल बांटा करती हूं; क्योंकि महाशक्ति के सभी रूपों में काली सबसे अधिक प्रेम-भरी हैं; उन्हीं का प्रेम सबसे अधिक सक्रिय और सबसे अधिक शक्तिशाली 'प्रेम' है। इसीलिए मैं हर वर्ष 'काली पूजा' के दिन "दिव्य प्रेम" की पंखुड़ियां बांटती हूं। तो स्वभावतः उस व्याख्या के लिए कि 'भागवत प्रेम' को प्रकट करने के लिए ये ही फूल क्यों चुने गये—यह व्याख्या काफी है।

माताजी, यह कौन-सा पुरुष था जिसके बारे में आपने कहा है?

तुमसे किसने कहा कि वह पुरुष था?

मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा कि वह पुरुष था या स्त्री। मैंने "भागवत सत्ता" कहने की सावधानी बरती थी।...

यह प्रागैतिहासिक कहानी है, अतः तुम्हें उसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिल सकती। यह कहीं लिखी हुई नहीं है। इसके लिए कोई लिखित दस्तावेज़ नहीं हैं। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४१२, ४०३-०४

शुद्ध और निस्स्वार्थ प्रेम

शुद्ध और निस्स्वार्थ प्रेम—तेरा प्रेम जहां तक हम उसे देख या अभिव्यक्त कर सकते हैं—वह एकमात्र चाबी है जो तुझे खोजने वाले सभी हृदयों को खोल सकती है। जो बुद्धि के मार्ग का अनुसरण करते हैं वे बहुत उच्च और सत्य धारणा बना सकते हैं, उन्हें सच्चे जीवन की पूरी जानकारी हो सकती है, ऐसे जीवन की जो तेरे साथ एक है लेकिन वे उसे **जानते** नहीं, उन्हें उस जीवन का कोई आन्तरिक अनुभव नहीं होता, वे तेरे साथ समस्त सम्पर्क से अनभिज्ञ होते हैं। और जिनमें बौद्धिक ज्ञान होता है, जिन्होंने अपने-आपको एक ऐसी रचना में कर्म के लिए बन्द कर रखा है जो उन्हें सर्वोत्तम प्रतीत होती है, उन्हें बदलना सबसे अधिक कठिन होता है; और किसी भी सद्भावनावाले व्यक्ति की अपेक्षा उनमें भागवत चेतना को जगाना सबसे अधिक कठिन होता है। केवल प्रेम ही यह चमत्कार सिद्ध कर सकता है क्योंकि प्रेम सभी दरवाजों को खोलता, सभी दीवारों को भेदता और सभी बाधाओं को पार कर जाता है और जरा-सा सच्चा प्रेम सुन्दरतम भाषणों की अपेक्षा कहीं अधिक कार्य कर सकता है।

हे प्रभो, वर दे कि मेरे अन्दर सच्चे प्रेम का यह फूल खिले ताकि जो भी मेरे समीप आयें वे सब सुगन्धित हो उठें और इसकी सुगन्ध उन्हें पवित्र बनाये।

इस प्रेम में शान्ति और आनन्द पाये जाते हैं जो समस्त बल और उपलब्धि के स्रोत हैं। यह अचूक चिकित्सक, परम सान्त्वना देने वाला है; यह विजयी और परम गुरु है।

हे प्रभो, मेरे मधुर स्वामी, जिसकी मैं मौन होकर आराधना करती हूं, जिसे मैं पूरी तरह समर्पित हूं, जो मेरे जीवन पर शासन करता है, अपने शुद्ध प्रेम से मेरे हृदय को प्रज्वलित कर ताकि वह उस ज्वलन्त वेदी की

तरह प्रज्वलित हो जो सभी अपूर्णताओं को भस्म कर दे, जो अहंकार के मृत काष्ठ और अज्ञान के काले कोयले को सुखद ऊष्मा और कान्तिमय प्रकाश में बदल दे।

हे प्रभो, मैं तेरी ओर आनन्दमय और साथ ही गभीर भक्ति के साथ मुड़ती हूं और तुझसे अनुनय करती हूं :

वर दे कि तेरा प्रेम अभिव्यक्त हो,

वर दे कि तेरा राज्य आये।

वर दे कि तेरी शान्ति जगत् पर राज्य करे।

तेरा प्रेम विश्व से अधिक विशाल है

हे प्रभो, तू, जिसके बारे में मैं सदा-सर्वदा सचेतन रहूंगी, जिसे मैं अपनी सत्ता के छोटे-से-छोटे कोषाणु में अनुभव करना चाहूंगी, तू, जिसे मैं अपने-आपके रूप में जानना चाहूंगी और सभी चीजों में अभिव्यक्त पाऊंगी, तू, जो एकमात्र सद्वस्तु है, जीवन का एकमात्र कारण और लक्ष्य है, वर दे कि तेरे लिए मेरा प्रेम अधिकाधिक बढ़ता जाये ताकि मैं समस्त प्रेम बन जाऊं, स्वयं तेरा प्रेम बन जाऊं और तेरा प्रेम होकर मैं सर्वांगीण रूप से तेरे साथ एक हो जाऊं। वर दे कि यह प्रेम अधिकाधिक तीव्र, सम्पूर्ण, प्रकाशमय, शक्तिशाली होता जाये; वर दे कि यह प्रेम तेरी ओर उठने वाली अदम्य प्रेरणा बन जाये, तुझे प्रकट करने का अमोघ साधन बन जाये। वर दे कि इस सत्ता में हर चीज शुद्ध, गभीर, निस्स्वार्थ, दिव्य प्रेम बन जाये—अथाह गहराइयों से लेकर बाह्यतम पदार्थ तक। ऐसी कृपा कर कि वह साकार भगवान् जो इस समष्टि में अभिव्यक्त होता है, पूरी तरह तेरे पूर्ण और भव्य प्रेम से ढले, ऐसे प्रेम से जो एक ही साथ समस्त ज्ञान का मूल और सिद्धि है; वर दे कि विचार शुद्ध, सुव्यवस्थित, प्रदीप्त और तेरे प्रेम द्वारा रूपान्तरित हो; कृपा कर कि सभी जीवन-शक्तियां एकमात्र तेरे प्रेम से सिञ्चित और गठित होकर उससे अप्रतिरोध्य शुद्धि और सतत ऊर्जा, शक्ति और आर्जव प्राप्त करती रहें। ऐसी कृपा कर कि यह दुर्बल मध्यस्थ सत्ता अपनी दुर्बलता का लाभ उठा कर पूरी तरह तेरे प्रेम से बने तत्त्वों में अपने-आपको पुनर्निर्मित कर सके और कृपा कर कि यह शरीर जो अभी प्रज्वलित वेदी है, तेरे दिव्य, निर्वैयक्तिक, उच्च और शान्त प्रेम

को रोम-रोम से विकीरित करे...। कृपा कर कि मस्तिष्क तेरे प्रेम द्वारा पुनर्निर्मित हो। और अन्त में कृपा कर कि तेरा प्रेम सभी चीजों को स्वयं अपनी शक्ति, भव्यता, मधुरता और ऊर्जा से परिपूर्ण, परिप्लावित, परिव्याप्त, रूपान्तरित, पुनरुज्जीवित और अनुप्राणित कर दे। तेरे प्रेम में शान्ति है, तेरा प्रेम आनन्द है, तेरे प्रेम में है सेवक के काम का उच्चतम उत्तोलक।

तेरा प्रेम सारे विश्व से अधिक विशाल है और सभी युगों से अधिक चिरस्थायी है; वह अनन्त है, शाश्वत है, स्वयं 'तू' है। और मैं भी स्वयं 'तू' बनना चाहती हूं और मैं वह हूं ही, क्योंकि यही तेरा विधान है, यही है तेरी इच्छा। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २९, ९१-९२

दिव्य प्रेम की विजयी शक्ति

हे दिव्य प्रेम की विजयी शक्ति, तू इस विश्व की एकछत्र स्वामिनी है, तू इसकी स्रष्टी और रक्षिका है, तूने इसे अन्ध-व्यवस्था में से उभरने की अनुमति दी है और अब तू ही इसे अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर लिये जा रही है।

ऐसी कोई तुच्छ वस्तु नहीं है जिसमें मैं तुझे चमकते न देखती होऊं, तेरी इच्छा के प्रति ऐसी कोई आभासी विरोधी सत्ता नहीं है जिसमें मैं तुझे निवास करते, कार्य करते और प्रसारित होते हुए न देखती होऊं।

हे मेरे मधुर स्वामी, इस प्रेम के सारतत्त्व, मैं तेरा हृदय हूं और तेरे प्रेम की बौछारें मेरी समस्त सत्ता में से प्रवाहित होती हैं ताकि सभी वस्तुओं में तेरे प्रेम को जगा दें, बल्कि यूं कहें कि सभी वस्तुओं को तेरे प्रेम की उस चेतना की ओर जगा दें जो सबको अनुप्राणित करती है।

वे सब जो तुझे नहीं पहचानते, वे सब जो तुझे नहीं जानते, वे सब जो तेरे मधुर और दिव्य विधान से मुंह मोड़ने की कोशिश करते हैं, उन सबको मैं अपने प्रेम की भुजाओं में लेती हूं, मैं उन्हें अपने प्रेम के हृदय में झुलाती हूं और उन्हें तेरी दिव्य अग्निशिखाओं के अर्पित करती हूं ताकि तेरा चमत्कारपूर्ण तेज उनमें प्रवेश करे और वे तेरे परमानन्द में परिवर्तित हो जायें।

हे प्रेम, समुज्ज्वल प्रेम, तू सबमें प्रवेश करता है, सबको रूपान्तरित करता है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ९७-९८

सभी चीजों में और सर्वत्र यह भागवत प्रेम बन जा

(मैंने नीरवता में जो सुना और कल सांझ को लिख लिया)

"हर चीज को, यहां तक कि बुद्धि और चेतना को भी त्याग कर तू अपने हृदय को उस भूमिका के लिए तैयार कर पायी जो उसे दी गयी थी, जो देखने में सबसे अधिक निष्फल भूमिका है। यह है ऐसे स्रोत की भूमिका जो अपने जल को हमेशा प्रचुर मात्रा में सबके लिए बहने देता है, लेकिन जिसकी ओर कभी कोई धारा वापिस बह कर नहीं आती; वह अपनी अक्षय शक्ति को गहराइयों से खींचता है और बाहर से किसी चीज की आशा नहीं करता। लेकिन तू पहले से ही उस भव्य परम आनन्द को अनुभव कर सकती है जो प्रेम के इस अक्षय प्रसार के साथ आता है; क्योंकि प्रेम स्वयं अपने लिए पर्याप्त होता है और उसे किसी आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं होती; यह बात व्यक्तिगत प्रेम के लिए भी सच्ची है तो फिर उस दिव्य प्रेम के लिए तो कितनी अधिक सच्ची होगी जो इतनी उदात्तता के साथ अनन्त को प्रतिबिम्बित करता है।

"सभी चीजों में और सर्वत्र, अधिकाधिक विस्तार में और अधिकाधिक तीव्रता के साथ वह प्रेम बन जा और सारा जगत् ही एक साथ तेरा कर्म, तेरी सम्पदा, तेरा कार्यक्षेत्र और तेरी विजय बन जायेगा। दृढ़ता के साथ युद्ध कर उन अन्तिम सीमाओं को तोड़ने के लिए जो तेरी सत्ता के विस्तार के सामने क्षणभंगुर अवरोध-मात्र हैं, उस अन्तिम अन्धकार को जीत लेने के लिए जिसे ज्योतिदायिनी शक्ति पहले से ही आलोकित कर रही है। जीतने और विजय पाने के लिए युद्ध कर; आज तक जो चीजें थीं उन सब पर विजय पाने के लिए युद्ध कर, युद्ध कर ताकि नया प्रकाश फूट पड़े, जगत् को जिस नये 'आदर्श' की जरूरत है उसके लिए लड़। सभी भीतरी और बाहरी प्रतिरोधों के विरुद्ध अनम्य होकर लड़ती चल। यही वह महा-मूल्यवान् मोती है जो तेरी सिद्धि के लिए तुझे दिया जा रहा है।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १९२-९३

"हे परम और एकमात्र 'विश्वस्त' सहचर, तू जो पहले से ही वह सब जानता है जो हम तुझसे कह सकते हैं क्योंकि तू ही तो उसका स्रोत है!

"हे परम और एकमात्र 'सखा', तू जो हमें स्वीकार करता है, हमसे प्रेम करता है और हमें वैसा ही समझता है जैसे कि हम हैं क्योंकि स्वयं तूने ही तो हमें ऐसा बनाया है!

"हे परम और एकमात्र 'पथ-प्रदर्शक', तू जो कभी हमारी उच्चतम इच्छा का प्रतिवाद नहीं करता क्योंकि उसके अन्दर तू ही तो इच्छा करता है!

"तेरे सिवा कहीं और किसी ऐसे को ढूंढ़ना मूर्खता होगी जो हमारी बात सुने, समझे, हमसे प्रेम करे और हमें मार्ग दिखलाये, क्योंकि तू हमेशा हमारे आह्वान पर तैयार रहता है और हमें कभी धोखा नहीं देता!"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २११

२५ नवम्बर १९९७

"हे प्रभो, चूंकि मैंने दारुण विपत्ति के समय अपनी श्रद्धा की पूरी सच्चाई के साथ कहा था: "तेरी इच्छा पूरी हो", तू अपनी महिमा के परिधान में आया। मैं तेरे चरणों में साष्टांग नत हो गयी, तेपे वक्ष में मैंने अपना आश्रय पाया। तू ने मेरी सत्ता को अपनी दिव्य ज्योति से भर दिया और अपने आनन्द से आप्लावित कर दिया है। तू ने अपनी मैत्री का फिर से विश्वास दिलाया है और मुझे अपनी सतत उपस्थिति का आश्वासन दिया है। तू वह विश्वस्त मित्र है जो कभी धोखा नहीं देता, तू शक्ति, सहारा और पथ-प्रदर्शक है। तू वह प्रकाश है जो अन्धकार को बिखेर देता है, वह विजेता है जो विजय को निश्चित बनाता है। चूंकि तू उपस्थित है इसलिए सब कुछ स्पष्ट हो गया है। मेरे सुदृढ़ हृदय में अग्नि फिर से प्रज्वलिच हो उठी है और उसकी भव्यता चमक रही है तथा सारे वातावरण को प्रदीप्त और शुद्ध कर रही है...।

तेरे लिए मेरा प्रेम, जो अभी तक दबा हुआ था, फिर से उठल पड़ा है, वह शक्तिशाली, प्रभुता-सम्पन्न और अप्रतिरोध्य है—उसे जिस अग्नि-परीक्षा में से निकलना पड़ा है उससे वह दस गुना बढ़ गया है। उसने अपने एकान्त में बल पाया है, सत्ता के ऊपरी तल तक उठ आने, अपने-आपको समस्त चेतना पर स्वामी के रूप में स्थापित करने का और अपनी उमड़ती हुई धारा में सब कुछ बहा ले जाने का बल पाया है...।

तू ने मुझसे कहा है: "मैं लौट आया हूं और अब तुझे कभी न छोडूंगा।"

और मैंने तेरे वचन को माटी में सिर नवाकर स्वीकार किया है।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २१०

दुःख का स्रोत

जो स्वयं दुःख भोग चुके हैं केवल वे ही दूसरों का दर्द समझ सकते हैं, उसमें हिस्सा बंटा सकते हैं, और उसे हलका कर सकते हैं। और मैं यह भी समझ गयी हूं, हे शान्तिदायक भगवान्, हे परम आत्म-त्यागी, कि हमारे सब कष्टों के बीच हमें सहारा देने के लिए, हमारे सारे दुःख और दर्द शान्त करने के लिए तूने पृथ्वी के तथा मनुष्य के सकल दुःखों को, बिना किसी अपवाद के, जाना तथा अनुभव किया होगा।

पर फिर यह कैसी बात है कि जो तेरे पुजारी होने का दावा करते हैं, उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो तुझे यन्त्रणा देने वाला निर्दयी समझते हैं, तुझे ऐसा कठोर न्यायाधीश मानते हैं जिसने इन सब यन्त्रणाओं को स्वेच्छा से भले न रचा हो, पर जो इनका अनुमोदन तो करता ही है?

नहीं, मैं अब समझ रही हूं कि ये सब कष्ट जड़-पदार्थ की अपूर्णता से आते हैं, जो अपनी अव्यवस्था और अपरिपक्वता के कारण तुझे अभिव्यक्त करने के अयोग्य है; और उससे सर्वप्रथम कष्ट भी तू ही पाता है, इससे असन्तुष्ट हो, अपनी तीव्र उत्कण्ठा में तू ही सबसे पहले अव्यवस्था को व्यवस्था में, दुःख को सुख में, विरोध को सामञ्जस्य में परिवर्तित करने के लिए प्रयत्न और परिश्रम करता है।

कष्ट अनिवार्य नहीं है, वाञ्छनीय भी नहीं, पर जब वह आता है तो हमारे लिए कितना उपयोगी हो सकता है!

प्रत्येक बार जब दुःख के बोझ से हृदय टूटता प्रतीत होता है, तब अन्तर की गहराई में एक द्वार खुलता है और अधिकाधिक समृद्ध गुप्त रत्नराशि लिये नये-नये क्षितिज प्रकट होते हैं और उनकी स्वर्णिम आभा विनाश के कगार पर खड़े जीवन को एक नवीन और अधिक प्रखर जीवन प्रदान करती हुई आती है।

और जब, उत्तरोत्तर अवतरणों से होता हुआ मनुष्य उस यवनिका तक पहुंचता है जिसके उठते ही साक्षात् 'तू' प्रकट होता है, तब, 'हे प्रभु', कौन वर्णन कर सकता है 'जीवन' की उस प्रखरता का जो समस्त सत्ता के अन्दर पैठ जाती है, 'ज्योति' की उस शोभा का जो उसे परिप्लावित कर देती है, 'प्रेम' की उस महिमा का जो चिरकाल के लिए उसका रूपान्तर कर देती है! —'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. २३-२४

भागवत प्रेम हमेशा तुम्हें थामे रहता है

सुनो मेरे नन्हे बालक! तुम, जो आज स्वयं को इतना टूटा हुआ और पतित अनुभव करते हो, जिसके पास कुछ भी बाकी नहीं रहा, अपनी दरिद्रता ढकने के लिए, अपने गर्व का पोषण करने के लिए कुछ भी नहीं रहा, ऐसे तुम इतने महान् कभी नहीं थे! जो गहराई में जागता है, वह शिखर के कितने समीप होता है! कारण, खाई जितनी अधिक गहरी होती है, ऊंचाई उतनी ही अधिक प्रकट होती है!...

यदि अग्नि-परीक्षाओं या त्रुटियों ने तुम्हें पछाड़ दिया है, यदि तुम दुःख के अथाह गर्त में डूब गये हो तो जरा भी शोक न करो, क्योंकि वस्तुतः वहीं पर तुम्हें मिलेगा भगवान् का स्नेह, उनका परम आशीष! क्योंकि तुम पावनकारी दुःखों की अग्नि में तप चुके हो, इसलिए अब तुम्हें गौरवमय शिखर मिलेंगे।

तुम बंजर बीहड़ में हो: तो सुनो नीरवता की वाणी। बाहर की स्तुति और प्रशंसा का कलरव ही तुम्हारे कानों को सुख देता रहा है; अब नीरवता की वाणी तुम्हारी आत्मा को सुख देगी, तुम्हारे अन्दर जाग्रत् करेगी गहराइयों की प्रतिध्वनि, दिव्य स्वर-संगतियों का नाद!

तुम गहन रात्रि में चल रहे हो: तो रात्रि की अमूल्य सम्पदा संग्रह करते चलो। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश बुद्धि के मार्ग आलोकित कर देता है, किन्तु रात्रि की श्वेत प्रभा में पूर्णता के गुप्त पथ दृष्टिगोचर होते हैं, आध्यात्मिक सम्पदाओं का रहस्य खुलता है।

तुम नग्नता और अभाव के मार्ग पर हो: यह प्रचुरता का मार्ग है। जब तुम्हारे पास कुछ न बचेगा तो तुम्हें सब कुछ दिया जायेगा। क्योंकि जो सच्चे और सीधे हैं उनके लिए बुरे-से-बुरे में से सदा भले-से-भला निकल आता है।

जमीन में बोया हुआ एक दाना हजारों दाने पैदा करता है। दुःख के पंखों का प्रत्येक स्पन्दन गौरव की ओर ले जाने वाली उड़ान बन सकता है।

और जब शत्रु मनुष्य पर क्रुद्ध हो टूट पड़ता है, तो वह उसके नाश के लिए जो कुछ करता है, वही उसे महान् बनाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ५१-५२

अधिक ऐकान्तिक रूप से 'भागवत प्रेम' का सहारा लो। जब मनुष्य 'भागवत प्रेम' पाये तो किसी भी मानव प्रेम का क्या मूल्य हो सकता है?
—श्रीमां

उत्कृष्ट उदारता है प्रेम की अभिव्यक्ति

हर चीज का सम्बन्ध अपने साथ जोड़ने की आदत से हम जितना ऊपर उठेंगे उतना ही सचमुच प्रभावशाली उदारता को अपनी क्रियाओं में ला सकेंगे और यह उदारता प्रेम के साथ एक है।

इसके अतिरिक्त, एक ऊंचाई है जहां सभी सद्‌गुण मिल कर एक होते हैं : प्रेम, भलाई, करुणा, क्षमा, उदारता अपने सार-तत्त्व में एक और अभिन्न हैं।

इस दृष्टि से माना जा सकता है कि उदारता प्रेम के सद्‌गुणों द्वारा निश्चित, व्यावहारिक, साकार बाह्य क्रिया है।

क्योंकि एक शक्ति है जो हमेशा सबको बांटी जा सकती है बशर्ते कि वह एकदम निर्वैयक्तिक रूप में बांटी जाये। यह है प्रेम, प्रेम जिसमें प्रकाश और जीवन समाये हुए हैं, अर्थात्‌, जिसमें समझदारी, स्वास्थ्य और खिलने की सभी सम्भावनाएं हैं।

हां, एक उत्कृष्ट उदारता है जो प्रसन्न हृदय और प्रशान्त आत्मा से उठती है। जिसने आन्तरिक शान्ति पा ली है वह जहां कहीं भी जाये मोक्ष का अग्रदूत, आशा और आनन्द का वाहक होता है। क्या यही वह चीज नहीं है जिसकी बेचारी कष्ट में पड़ी हुई मानवजाति को सबसे अधिक आवश्यकता है?

हां, कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके विचार प्रेममय होते हैं, जो प्रेम को विकीरित करते, फैलाते हैं। ऐसे लोगों की उपस्थिति मात्र ही सबसे अधिक सक्रिय और वास्तविक उदारता है।

यद्यपि वे कोई शब्द नहीं बोलते, कोई इशारा नहीं करते, लेकिन फिर भी बीमार अच्छे हो जाते हैं, पीड़ितों को शान्ति मिलती है, अज्ञानियों को बोध मिलता है, दुष्टों को राहत मिलती है, कष्ट सहने वालों को सान्त्वना मिलती है और सभी के अन्दर एक गहरा परिवर्तन आ जाता है जो उनके लिए नये क्षितिज खोल देता है, उन्हें एक कदम आगे बढ़ने-योग्य बनाता है और निस्सन्देह यह कदम प्रगति के अनन्त पथ पर निर्णायक होगा।

ये लोग, जो प्रेम के कारण अपने-आपको सबको दे देते हैं, जो सबके सेवक बन जाते हैं, ये परम उदारता के जीते-जागते प्रतीक हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ११९-२०

आन्तरिक निकटता

हम उस दिव्य जीवन की अद्‌भुत गहराइयों को भले न पा सकें जिसके बारे में विरले ही सतत सचेतन होते हैं, फिर भी विचार के क्षेत्र में हम देश और काल के नियमों से छुटकारा पा लेते हैं।

किसी के बारे में सोचना उसके पास होना है। दो व्यक्ति चाहे कहीं भी क्यों न हों, चाहे वे भौतिक दृष्टि से एक-दूसरे से हजारों किलोमीटर दूर क्यों न हों, अगर वे एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं तो वे बहुत वास्तविक रूप में साथ होते हैं। अगर हम अपने विचार को काफी एकाग्र कर सकें और अपने-आप पर्याप्त रूप में उस विचार पर एकाग्र हो सकें तो हम जिसके बारे में सोच रहे हैं उसके बारे में समग्र रूप से सचेतन हो सकते हैं, और यदि वह मनुष्य है तो कभी-कभी उसे देख और सुन भी सकते हैं —हर हालत में, उसके विचार तो जान ही सकते हैं।

इस तरह अलगाव नहीं रहता, यह एक भ्रान्तिपूर्ण आभास है और, चाहे फ़्रांस में हो या अमरीका में, ईरान या चीन में, हम जिससे प्रेम करते हैं, जिसके बारे में सोचते हैं, हमेशा उसके पास रहते हैं।

लेकिन यह तथ्य हमारे जैसे मामले में और भी ज्यादा वास्तविक हो उठता है जहां हम एक विशेष रूप से सक्रिय, सचेतन विचार के साथ सम्पर्क में आना चाहते हैं, एक ऐसे विचार के साथ जो अनन्त प्रेम का रूप ले लेता और उसे प्रकट करता है, एक ऐसा विचार जो प्रेम-भरी, पिता-तुल्य सहायता करने की उत्कण्ठा में सारी धरती को अपने में समो लेता है और जो अपने-आपको उसके सुपुर्द कर देते हैं उनकी सहायता करने में जिसे हमेशा प्रसन्नता होती है।

इस मानसिक सम्पर्क का अनुभव करें और हम देखेंगे कि दुःख के लिए कोई स्थान नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १२९-३०

तुम्हें अकेलापन इसलिए लगता है क्योंकि तुम प्रेम पाने की आवश्यकता का अनुभव करते हो। बिना मांग किये, केवल प्रेम के आनन्द के लिए (संसार का सबसे अद्‌भुत आनन्द!) प्रेम करना सीखो और तुम फिर कभी अकेला अनुभव न करोगे। *—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १३३*

प्रेम का तरीका

भगवान् का प्रेम है : सभी चीजों के भागवत 'सारतत्त्व' के लिए अभीप्सा, जिसे हमने सम्पूर्ण प्रदीप्ति के क्षणों में देखा है।

और तब इस भागवत 'सारतत्त्व' के प्रति आत्म-निवेदन, इस 'शाश्वत विधान' के प्रति हर क्षण, अपनी हर क्रिया में समग्र आत्म-दान। सम्पूर्ण समर्पण : अब व्यक्ति केवल एक विनीत यन्त्र, 'परम प्रभु' के सामने एक आज्ञाकारी सेवक रह जाता है। 'प्रेम' इतना पूर्ण हो जाता है कि वह उस सबसे अनासक्ति पैदा कर देता है जो निरपेक्ष ब्रह्म नहीं है, 'उन' पर पूर्ण एकाग्र नहीं है।

"और इसके अतिरिक्त, इससे भी ऊपर उठना असम्भव नहीं है क्योंकि स्वयं प्रेम भी प्रेमी और प्रेमपात्र के बीच अवगुण्ठन बन जाता है।"

तादात्म्य। तीसरा उपाय—मानवजाति के लिए प्रेम। मानवजाति के अत्यधिक दुःख-दर्द के तीव्र प्रत्यक्ष ज्ञान के और एक स्पष्ट दृष्टि के परिणामस्वरूप इस दुःख-दर्द को समाप्त कर देने के लिए अपने-आपको पूरी तरह समर्पित कर देने का संकल्प उठता है।

चाहे कितनी भी कम मात्रा में क्यों न हो, औरों की सहायता करने के लिए अपने समस्त विचार, अपनी समस्त शक्ति, अपने सारे क्रिया-कलाप अर्पित कर देने में आत्म-विस्मृति।

"करुणा से उमड़ते हृदयों के साथ दुःख-पीड़ित संसार में जाओ, प्रशिक्षक बनो, जहां कहीं अविद्या-अन्धकार का राज्य है वहां ज्योति जगाओ।"

मानवजाति के प्रति समर्पण चार क्षेत्रों में अभिव्यक्त होता है। तुम औरों को चार तरह से दे सकते हो : भौतिक उपहार। बौद्धिक उपहार : ज्ञान। आध्यात्मिक उपहार : सामञ्जस्य, सुन्दरता, लय। सम्पूर्ण उपहार, उदाहरण का उपहार : उन्हीं लोगों के द्वारा चरितार्थ किया जा सकता है जिन्होंने तीनों मार्गों का अनुसरण किया है, जिन्होंने अपने अन्दर विकास के सभी तरीकों का, शाश्वत के बारे में सचेतन होने का समन्वय कर लिया है। एक ऐसा उदाहरण जो अपने ही बारे में नहीं सोचता, तुम उदाहरण बनते हो क्योंकि तुम हो, क्योंकि तुम 'शाश्वत दिव्य चेतना' में निवास करते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १४६-४७

प्रेम वैश्व और सनातन है

प्रेम विश्वव्यापी महान् शक्तियों में से एक है। इसका अस्तित्व अपने-आपमें है और जिन विषयों में यह प्रकट होता है और जिनके द्वारा अपने-आपको प्रकट करता है उनसे इसकी गतिविधि मुक्त और स्वतन्त्र रहती है। इसे जहां कहीं अभिव्यक्त होने की सम्भावना दीखती है, जहां कहीं ग्रहणशीलता होती है, जहां कहीं द्वार खुला होता है, वहीं यह अभिव्यक्त हो जाता है। तुम जिसे प्रेम कहते हो, जिसे तुम निजी या व्यक्तिगत वस्तु समझते हो वह इस विश्वव्यापी शक्ति को ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने की तुम्हारी क्षमता-मात्र है। परन्तु विश्वव्यापी होने के नाते यह कोई अचेतन वेग नहीं है, यह एक परम सचेतन दिव्य 'शक्ति' है। यह सचेतन रूप से धरती पर अपनी अभिव्यक्ति और सिद्धि के लिए प्रयत्न करती है; सचेतन होकर अपने उपकरण चुनती है, जो लोग इसके आवाहन का उत्तर दे सकते हैं उन्हें यह अपने स्पन्दनों के प्रति जाग्रत् करती है और अपने शाश्वत लक्ष्य को उनके अन्दर संसिद्ध करने का प्रयास करती है, और जब कोई उपकरण अनुपयुक्त होता है तो उसे छोड़ कर दूसरों को ढूंढ़ती है। मनुष्य सोचते हैं कि वे एकाएक प्रेम-पाश में बंध गये हैं, वे अपने प्रेम को उत्पन्न होते, बढ़ते और फिर मुरझाते देखते हैं—अथवा, हो सकता है कि कुछ लोगों में, जो उसकी अधिक स्थायी क्रिया के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं, यह कुछ अधिक टिके। परन्तु यह समझना भ्रम है कि यह उनका अपना व्यक्तिगत अनुभव था। वह तो वैश्व प्रेम के सनातन समुद्र की एक लहर-मात्र थी।

प्रेम वैश्व और सनातन है; यह अपने-आपको सदा अभिव्यक्त करता रहता है और अपने सार-रूप में सदा समरूप रहता है। यह एक 'भागवत शक्ति' है; इसकी बाह्य क्रियाओं में जो विकार दिखायी देते हैं वे इसके उपकरणों के होते हैं। प्रेम केवल मानव प्राणियों में ही अभिव्यक्त नहीं होता; यह सर्वत्र है। इसकी गति वनस्पतियों में भी है, शायद पत्थरों तक में भी है। पशुओं में इसकी उपस्थिति का पता लगाना सरल है। इस महान् और दिव्य शक्ति के विकार इसके सीमित उपकरण की मलिनता, अज्ञान और स्वार्थ से आते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ७८-७९

प्रेम में कोई कामना नहीं होती

प्रेम में, इस शाश्वत शक्ति में, कोई चिपटने की वृत्ति नहीं होती, न कोई इच्छा, न स्वत्व की भूख और न स्वार्थ-भरी आसक्ति होती है। अपनी विशुद्ध गति में वह परमात्मा के साथ एक होने के लिए आत्मा की खोज है, यह एक ऐसी खोज है जो अन्य समस्त वस्तुओं से निरपेक्ष और निर्लिप्त रहती है। भागवत प्रेम अपने-आपको देता है, कोई मांग नहीं करता। मनुष्यों ने इसको क्या बना डाला है यह कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने इसे एक भद्दी और बीभत्स वस्तु बना दिया है। फिर भी, मनुष्यों में भी, प्रेम का प्रथम संस्पर्श अपने पवित्रतर सार का कुछ अंश ले आता है। क्षण-भर के लिए वे अपने-आपको भुला देने में समर्थ हो जाते हैं, क्षण-भर के लिए इसका दिव्य स्पर्श, सभी सुन्दर और मनोहर चीजों को जगाता है और बढ़ाता है। परन्तु बाद में अपनी अपवित्र मांगों से भरी, बदले में किसी चीज की याचना करती हुई, जो कुछ देती है उसके बदले में कुछ चाहती हुई, अपनी निकृष्ट तृप्तियों के लिए शोर मचाती हुई और जो दिव्य था उसे विकृत और कलुषित करती हुई मानव प्रकृति ऊपरी तल पर उठ आती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ७९

दिव्य प्रेम को अभिव्यक्त करना

भागवत प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए तुम्हें उसे ग्रहण करने-योग्य होना चाहिये। क्योंकि, उसे वे ही अभिव्यक्त कर सकते हैं जो इसके नैसर्गिक प्रवाह के लिए स्वभावतः खुले होते हैं। उनमें यह उद्‌घाटन जितना विशाल और अबाध होगा उतना ही वे दिव्य प्रेम को उसकी मौलिक पवित्रता के साथ अभिव्यक्त कर सकेंगे; जितना ही यह निम्नतर मानव भावों से मिश्रित होता है, उतना ही अधिक विकार इसकी अभिव्यक्ति में आ जाता है। जो प्रेम को उसके असली और सच्चे रूप में ग्रहण करने के लिए खुला हुआ नहीं है वह भगवान् के समीप नहीं पहुंच सकता। ज्ञान-मार्ग के अनुयायी भी एक समय ऐसे स्थल पर जा पहुंचते हैं, जहां से यदि वे आगे बढ़ना चाहें तो अपने-आपको ज्ञान के साथ प्रेम में प्रवेश करते हुए पाते हैं और अनुभव करते हैं कि दोनों एक ही हैं। ज्ञान भगवत्-मिलन की ज्योति है और प्रेम ज्ञान का अपना हृदय।...

जो लोग इस जगत् में भगवान् को प्रकट करने और पार्थिव जीवन को रूपान्तरित करने के लिए आये हैं उनमें से कुछ ने दिव्य प्रेम को अधिक पूर्णता के साथ अभिव्यक्त किया है। कुछ में तो इस अभिव्यक्ति की पवित्रता इतनी अधिक थी कि समस्त मानवजाति ने उन्हें गलत समझा। यहां तक कि उन पर कठोर और प्रेमशून्य होने का दोष लगाया गया है, यद्यपि उनमें दिव्य प्रेम विद्यमान है। परन्तु उनमें इसका रूप भी इसके तत्त्व की तरह मानव नहीं, दिव्य होता है। मनुष्य जब प्रेम की बात करता है तो वह इसे भावावेश और भावुकतापूर्ण दुर्बलता के साथ जोड़ देता है। परन्तु मनुष्य आत्म-विस्मृति की दिव्य प्रगाढ़ता से, बिना संकोच अपने लिए कुछ भी बचा कर रखे बिना, बदले में कुछ भी मांगे बिना, भेंट के तौर पर अपने-आपको पूर्ण रूप से न्योछावर कर देने की शक्ति से अपरिचित-सा है। और जब यह भागवत प्रेम दुर्बल भावुकता-भरे भावावेशों के बिना, अपने सत्य स्वरूप में आता है तो लोग इसे निष्ठुर और निष्प्राण पाते हैं; वे इसमें प्रेम की उच्चतम और तीव्रतम शक्ति को नहीं पहचान पाते।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ८०

आवश्यकता है रूपान्तर की

जिस भागवत प्रेम के सम्बन्ध में मैं कह रही हूं वह ऐसा 'प्रेम' है जो यहां इस भौतिक पृथ्वी पर, जड़-प्रकृति में अभिव्यक्त हो रहा है, किन्तु यदि उसे अवतरित होना है तो उसे मानव विकृतियों से सर्वथा मुक्त रहना चाहिये। अन्य सभी अभिव्यक्तियों की तरह इसके लिए भी प्राण एक अनिवार्य साधन है। परन्तु जैसा कि हमेशा हुआ है, इस अमूल्य वस्तु पर विरोधी शक्तियों ने अपना अधिकार जमा लिया है। प्राण की शक्ति ही इस मन्द और संवेदनशून्य जड़-प्रकृति में प्रविष्ट होकर उसे संवेदनक्षम तथा सजीव बनाती है। परन्तु विरोधी शक्तियों ने इसे विकृत कर दिया है; उन्होंने इसे हिंसा, स्वार्थ, कामना तथा हर प्रकार के भद्देपन का क्षेत्र बना दिया है, इसे भागवत कर्म में भाग लेने से रोक दिया है। बस, करने-लायक काम यही है कि हम इसे रूपान्तरित करें, इसकी गति का निग्रह अथवा नाश न करें। क्योंकि इसके बिना कहीं तीव्रता सम्भव नहीं है। हमारे अन्दर प्राण ही वह चीज है जिसका स्वभाव ही है अपने-आपको देना। प्राण ही वह तत्त्व

है जिसमें हमेशा किसी चीज को लेने का आवेग तथा बल रहता है, इसी कारण जो वस्तु अपने-आपको सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर सकती है, वह भी प्राण ही है; चूंकि वह अधिकार जमाना जानता है, इसलिए वह यह भी जानता है कि बिना कुछ बचाये हुए अपने-आपको कैसे दिया जाये। प्राण की सच्ची गति अन्य सभी गतियों से अधिक सुन्दर और अत्यन्त उत्कृष्ट है; किन्तु इसे तोड़-मरोड़ कर अत्यन्त भद्दा, अत्यन्त विरूप और अत्यन्त घृणास्पद बना दिया गया है। प्रेम-सम्बन्धी मानव कथाओं में जहां कहीं शुद्ध प्रेम का अणुमात्र भी प्रवेश हो पाया है और उसे बहुत अधिक विकार के बिना अभिव्यक्त होने दिया है, वहीं हमें एक सत्य और सुन्दर वस्तु दीख पड़ती है। और यदि यह गति अधिक देर तक नहीं ठहरती तो इसका कारण यह है कि यह अपने उद्देश्य और खोज से सचेतन नहीं है; इसे यह ज्ञान नहीं है कि इसकी खोज का विषय एक सत्ता का दूसरी सत्ताओं के साथ ऐक्य नहीं, बल्कि समस्त सत्ताओं का भगवान् के साथ ऐक्य है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ८३

भागवत प्रेम की महान् आहुति

प्रेम एक परमा शक्ति है जिसे 'शाश्वत चेतना' ने अपने-आपमें से निकाल कर धुंधले और अन्धकारग्रस्त जगत् में नीचे भेजा है, ताकि वह इस जगत् को और इसके जीवों को भगवान् के पास लौटा लाये। अज्ञान और अन्धकार में डूबा हुआ जड़प्राकृतिक जगत् भगवान् को भूल चुका था। प्रेम उस अन्धकार में आया; जो सोये पड़े थे उन्हें जगाया; जो कान बन्द थे उन्हें खोल कर उनमें यह सन्देश फूंका : "ऐसा कुछ है कि उसके लिए जागा जाये, उसके लिए जिया जाये, और वह है प्रेम!" और प्रेम के प्रति इस जाग्रति के साथ-साथ भगवान् के पास लौट चलने की सम्भावना भी इस जगत् में प्रविष्ट हुई। प्रेम के द्वारा सृष्टि भगवान् की ओर उठती है और प्रत्युत्तर में 'भागवत प्रेम' और 'भागवत कृपा' सृष्टि से मिलने के लिए नीचे की ओर झुकते हैं। जब तक यह आदान-प्रदान न हो, परमात्मा और पृथ्वी का यह पारस्परिक मिलन न हो, भगवान् की ओर से सृष्टि के प्रति और सृष्टि की ओर से भगवान् के प्रति 'प्रेम' की यह गति न हो तब तक प्रेम अपने शुद्ध सौन्दर्य में नहीं रह सकता, अपनी नैसर्गिक शक्ति

का और अपनी पूर्णता के प्रगाढ़ आनन्द का सञ्चार नहीं कर सकता। यह संसार मृत जड़-प्रकृति का जगत् था। फिर इसमें प्रेम का अवतरण हुआ जिसने इसे जीवन के प्रति जगा दिया। तभी से यह जगत् जीवन के इस दिव्य आदि-स्रोत की खोज में लगा है, किन्तु अपनी इस खोज में इसने हर प्रकार के गलत मोड़ लिये हैं, बारम्बार उलटे रास्तों पर पड़ता और अंधेरे में इधर-से-उधर भटकता रहा है। यह समूची सृष्टि किसी अज्ञात को खोजने वाले एक अन्धे की तरह अपने मार्ग पर चली है, इसमें खोज तो है, पर वह यह नहीं जानती कि वह क्या खोज रही है। इसने जो अधिक-से-अधिक प्राप्त किया है, जो मानव प्राणियों को प्रेम का उच्चतम स्वरूप दिखायी देता है, जो उनकी समझ में शुद्धतम और निःस्वार्थतम प्रकार का प्रेम है, वह है मां का अपने बच्चे के प्रति प्रेम। प्रेम की यह मानव गति अब तक जो पा सकी है उससे इतर किसी वस्तु को गुप्त रूप से ढूंढ़ रही है; किन्तु उसे नहीं मालूम कि वह वस्तु कहां मिलेगी, वह यह भी नहीं जानती कि वह है क्या। ज्यों ही मनुष्य की चेतना दिव्य प्रेम के प्रति जाग्रत् होती है, उस प्रेम के प्रति जो शुद्ध है, जो मानवरूपों में हुई सभी अभिव्यक्तियों से स्वतन्त्र है, त्यों ही वह उसे जान जाती है जिसके लिए वास्तव में उसका हृदय इतने समय से तरस रहा था। यही है 'आत्मा' की अभीप्सा का आरम्भ, जिसके फलस्वरूप चेतना में जागृति आती है और भगवान् के साथ सायुज्य के लिए उत्कण्ठा उत्पन्न होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ८३-८४

जगत् में भगवान् के प्रेम की अभिव्यक्ति उनकी महान् आहुति थी, उनका परम आत्म-दान था। 'पूर्ण चेतना' ने जड़-प्रकृति की अचेतना में निमग्न और विलीन होना स्वीकार किया ताकि अन्धकार की गहराइयों में भी चेतना जाग्रत् की जा सके और उनमें शनैः शनैः 'दिव्य शक्ति' उदित हो सके तथा सारे अभिव्यक्त विश्व को 'दिव्य चेतना' और भागवत प्रेम की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति बनाया जा सके। अपनी परम दिव्यता और पूर्ण अवस्था को, उसकी निरपेक्ष चेतना को, उसके अनन्त ज्ञान को खोना स्वीकार करके, अचेतना के साथ एक होकर रहना, अज्ञान और अन्धकार से भरे जगत् में वास करना ही परम प्रेम था। फिर भी शायद कोई भी

इसे प्रेम नहीं कहेगा; क्योंकि यह अपने-आपको ऊपरी भावनाओं से नहीं मढ़ता, इसने जो कुछ किया है उसके बदले में कोई मांग नहीं रखता, अपने बलिदान का प्रदर्शन नहीं करता। जगत् में प्रेम की शक्ति उन चेतनाओं की खोज में है जो इस भागवत गति को उसके विशुद्ध रूप में ग्रहण करने और उसे अभिव्यक्त करने के योग्य हों। समस्त जीवों की प्रेम के लिए यह दौड़, समस्त जीवों के तथा जगत् के हृदय में प्रेम के लिए अदम्य आवेग उस भागवत प्रेम की प्रेरणा के कारण ही है जो मनुष्य की समस्त कामना और चाह के पीछे वर्तमान है। प्रेम की शक्ति करोड़ों उपकरणों का स्पर्श करती है, सदा परीक्षण करती है, सदा असफल होती है; किन्तु इसका यह बार-बार का स्पर्श उपकरणों को तैयार कर रहा है और एक दिन आयेगा जब सहसा उनमें आत्म-दान करने और प्रेम करने की शक्ति जाग उठेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ८१

प्रेम के सोपान

सबसे पहले आदमी केवल तभी प्रेम करता है जब उससे प्रेम किया जाता है।

फिर, आदमी सहज रूप से प्रेम करने लगता है, लेकिन बदले में प्रेम पाना चाहता है।

फिर प्रेम पाये बिना भी प्रेम करता है, लेकिन फिर भी वह अपने प्रेम की स्वीकृति की चाह रखता है।

और अन्त में, शुद्ध और सरल रूप से प्रेम करने के आनन्द के सिवाय और दूसरी किसी आवश्यकता के बिना प्रेम करता है।

*

एक ऐसा प्रेम होता है जिसमें भाव अधिकाधिक ग्रहणशीलता और बढ़ते हुए ऐक्य के साथ 'भगवान्' की ओर मुड़ता है। उसे 'भगवान्' से जो मिलता है उसे वह औरों पर सचमुच कोई बदला चाहे बिना उंडेल देता है। अगर तुममें वह योग्यता हो तो यह प्रेम करने का उच्चतम और सर्वाधिक सन्तुष्टिदायी तरीका है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १३४

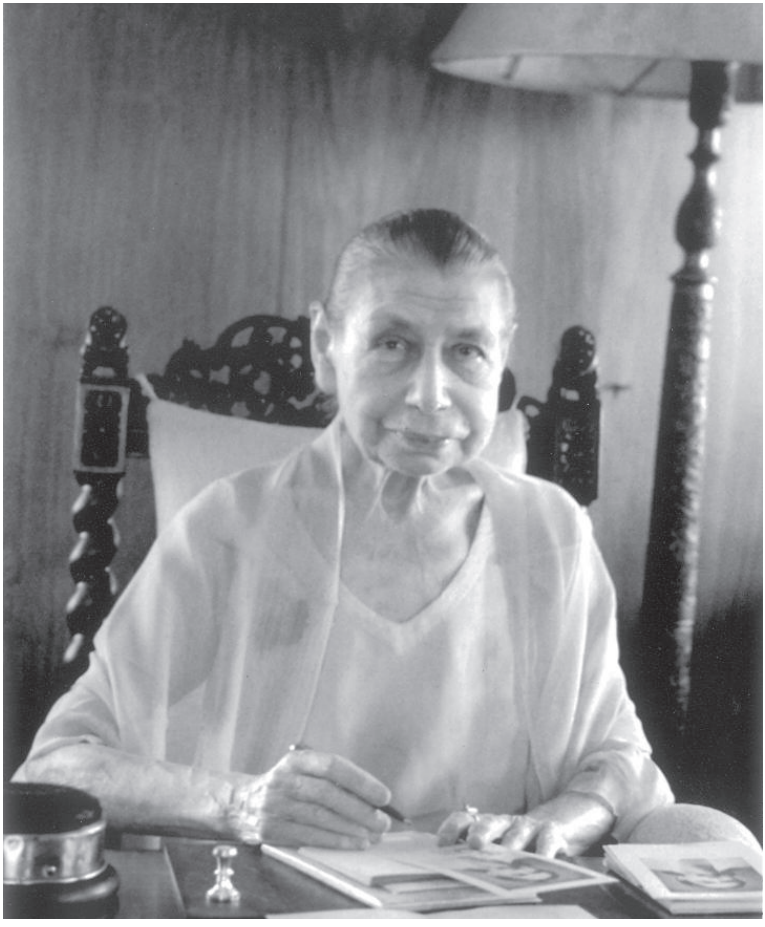

भौतिक में भागवत प्रेम के लिए अभीप्सा

यह एक फूल है जिसे हम "भौतिक में भागवत प्रेम के लिए अभीप्सा" कहते हैं। यहां "भौतिक" से मेरा मतलब है भौतिक चेतना, बिलकुल साधारण बहिर्मुखी चेतना, अधिकतर मनुष्यों की साधारण चेतना जो ज्यादा ऊंची चीजों के लिए अभीप्सा करने की जगह आराम, अच्छा भोजन, अच्छे कपड़े, सुखद सम्बन्ध आदि को ज्यादा महत्त्व देती है। भौतिक में भागवत प्रेम के लिए अभीप्सा में यह बात ध्वनित होती है कि भौतिक सिर्फ यही अनुभव करना चाहता है कि भगवान् उससे कैसे प्रेम करते हैं, इसके

अतिरिक्त वह कुछ नहीं मांगता। वह समझ लेता है कि उसकी सब सामान्य सन्तुष्टियां एकदम अपर्याप्त हैं। लेकिन इसमें समझौता नहीं हो सकता: यदि भौतिक भागवत प्रेम चाहता है तो उसे बस वही चाहना चाहिये, वह यूं नहीं कह सकता: "मैं भागवत प्रेम भी लूंगा और साथ ही अपनी अन्य आसक्तियों, आवश्यकताओं और उपभोगों को भी बनाये रखूंगा...।"

चैत्य-केन्द्र अभीप्सा का मौलिक निवास-स्थान है जहां से वह सत्ता के विभिन्न भागों में प्रकट होती है। जब मैं भौतिक में अभीप्सा की बात कहती हूं तो इसका मतलब यह होता है कि तुम्हारी वही चेतना जो भौतिक सुख-चैन के लिए लालायित रहती है, तुम्हारी चेतना के उच्चतर भागों के दबाव के बिना, ऐकान्तिक रूप से भागवत प्रेम की मांग करे। साधारणतः तुम्हें अपने उच्चतर भागों के द्वारा उसे दिव्य प्रकाश दिखाना होता है; निस्सन्देह, ऐसा निरन्तर करते रहना जरूरी है वरना भौतिक कभी न सीखेगा और अपने-आप सीख सकने से पहले प्रकृति के कई युग-चक्र लग जायेंगे। वास्तव में, प्रकृति के युग-चक्रों का मतलब है कि उसे सब प्रकार की तृप्तियां दी जायें और उन्हें निःशेष करके उसे यह विश्वास दिलाया जाये कि उनमें से किसी से उसे सन्तोष नहीं हो सकता, वह अन्दर से सचमुच जिस चीज की खोज कर रहा है वह भागवत सन्तोष है।

योग में हम प्रकृति की इस धीमी प्रक्रिया को तेज कर देते हैं और इस बात पर आग्रह करते हैं कि भौतिक चेतना सत्य को देखे, उसे पहचानना और उसी को चाहना सीखे। लेकिन उसे सत्य का दर्शन कैसे कराया जाये? बस, वैसे ही जैसे तुम अंधेरे कमरे में रोशनी लाते हो। अपनी भौतिक चेतना में अपने अधिक परिष्कृत भागों के अन्तर्भास और अभीप्सा के द्वारा प्रकाश करो और तब तक करते रहो जब तक उसे यह प्रतीति न हो जाये कि सामान्य निचली चीजों की भूख कितनी व्यर्थ और असन्तोषजनक है, और वह सहज रूप से सत्य की ओर न मुड़ चले। और जब वह सत्य की ओर मुड़ जायेगी तो तुम्हारा सारा जीवन ही बदल जायेगा—अचूक अनुभव है यह।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १४५-४६

प्रेम का प्रत्युत्तर प्रेम से देना चाहिये

... यदि घृणा के प्रत्युत्तर में प्रेम दिया जाये ताकि संसार परिवर्तित हो सके तो क्या यह बात कहीं अधिक स्वाभाविक नहीं होगी कि प्रेम भागवत प्रेम को उत्तर दे?

यदि कोई मनुष्यों का जीवन, कर्म और हृदय देखे, जैसे कि वे हैं, तो उसे उस सारी घृणा, अवज्ञा, अथवा, कम-से-कम उदासीनता को देख कर उचित रूप में ही आश्चर्य होगा जो इस असीम भागवत प्रेम के बदले में लौटायी जाती है जिसे भागवत करुणा धरती पर उंडेलती है—उस भागवत प्रेम के बदले में, जो संसार को भागवत आनन्द की ओर ले जाने के लिए यहां प्रत्येक क्षण कार्य कर रहा है और जिसे मानव हृदय में इतना कम प्रत्युत्तर मिलता है। परन्तु लोग दया दिखाते हैं केवल दुष्टों के प्रति, अधमों के प्रति, अवाञ्छनीयों के प्रति, असफल और असफलताओं के प्रति—वास्तव में इससे दुष्टता और असफलता को एक प्रकार का बढ़ावा मिलता है।

यदि कोई समस्या के इस पहलू पर कुछ अधिक विचार करे तो शायद उसे घृणा का उत्तर प्रेम से देने की आवश्यकता पर बल देने की जरूरत कम होगी, क्योंकि यदि मानव हृदय अपने अन्दर निरन्तर उंडेले जाने वाले भागवत प्रेम का प्रत्युत्तर सम्पूर्ण सच्चाई के साथ, समझने वाले और मूल्य आंकने वाले हृदय की स्वाभाविक कृतज्ञता के साथ देता तो जगत् में चीजें बड़ी तेजी से बदलने लगतीं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १९७-९८

दिव्य प्रेम को खोजना

कुछ ऐसे लोग होते हैं जो यह विश्वास करते हैं कि एक दिन एक विशिष्ट मनोभाव के साथ जग पड़ना और यह कहना ही काफी है कि "आह! मैं कितना चाहता हूं कि दिव्य 'प्रेम' के विषय में सचेतन हो जाऊं, मैं कितना चाहता हूं कि दिव्य 'प्रेम' को अभिव्यक्त करूं...।" जरा ध्यान दो, पता नहीं कितनी बार, हजारों-लाखों बार मनुष्य अपने अन्दर प्रेम की मानवीय सहज वृत्ति के एक क्षीण कम्पन को अनुभव करता है और कल्पना करने लगता है कि यदि दिव्य 'प्रेम' मुझे हस्तगत हो जाता तो महान् चीजें

संसिद्ध हो सकतीं, और वह कहता है, "मैं दिव्य 'प्रेम' के लिए प्रयास करने और उसे प्राप्त करने जा रहा हूं और हम उसका परिणाम देखेंगे।" यह सबसे बुरा सम्भव पथ है। क्योंकि, ऐसी हालत में तुम अनुभूति के एकदम प्रारम्भ होने से भी पहले उसके परिणाम को नष्ट कर देते हो। तुम्हें अभीप्सा और समर्पण की शुद्धता के साथ अपनी खोज का प्रारम्भ करना चाहिये जिन्हें प्राप्त करना पहले ही अपने-आपमें काफी कठिन है। इस 'प्रेम' की अभीप्सा के लिए अपने-आपको **तैयार** करने के लिए ही तुम्हें अपने ऊपर बहुत कुछ कार्य करना होता है। यदि तुम बहुत सच्चाई के साथ, बहुत सीधे ढंग से अपने-आपको देखो तो पाओगे कि ज्यों ही तुम 'प्रेम' के विषय में सोचना आरम्भ करते हो, तो सर्वदा तुम्हारे अन्दर का तुच्छ विक्षोभ ही चक्कर काटना आरम्भ कर देता है। जो कुछ तुम्हारे अन्दर अभीप्सा करता है वह विशिष्ट स्पन्दनों को चाहता है। सच पूछो तो योग-मार्ग में बहुत आगे बढ़े बिना 'प्रेम' की अपनी धारणा से प्राणिक तत्त्व को, प्राणिक स्पन्दन को पृथक् करना लगभग असम्भव है। जो कुछ मैं कह रही हूं वह मानव-प्राणियों के श्रमसाध्य अनुभव पर आधारित है। हां, पर तुम्हारे लिए, जिस स्थिति में तुम हो, जैसे कि तुम हो, तुम्हारा यदि विशुद्ध दिव्य 'प्रेम' के साथ सम्पर्क हो जाये तो वह तुम्हें बर्फ से भी अधिक ठण्डा प्रतीत होगा, अथवा इतनी अधिक दूर, इतना ऊंचा मालूम होगा कि तुम सांस लेने में भी असमर्थ होओगे; वह उस पर्वत-शृंग के जैसा होगा जहां तुम्हें ऐसा लगेगा मानों तुम जमे जा रहे हो और तुम्हें सांस लेने में भी कठिनाई होगी और जो कुछ तुम सामान्यतया अनुभव करते हो उससे वह कहीं दूर प्रतीत होगा। 'भागवत प्रेम', यदि चैत्य या प्राणिक स्पन्दन से आच्छादित न हो तो उसे अनुभव करना मनुष्य के लिए कठिन है। मनुष्य भगवत्कृपा की धारणा कर सकता है, उस कृपा की जो इतनी दूरस्थ, इतनी उच्च, इतनी निर्वैयक्तिक वस्तु है कि... हां, मनुष्य कृपा का अनुभव कर सकता है, पर वास्तव में कठिनाई के साथ ही कोई दिव्य 'प्रेम' को अनुभव करता है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २९०-९१

लोग हमेशा प्रेम के अधिकारों की बात कहते हैं, लेकिन प्रेम का एकमात्र अधिकार है आत्मदान का अधिकार। —*श्रीमां*

सच्चा प्रेम और मानवता

"अगर तुम मुझसे प्यार करते हो तो मैं तुमसे प्यार करता हूं, अगर तुम मुझसे प्यार नहीं करते तो मैं भी तुमसे प्यार नहीं करता।" प्रेम की पहली मानव अभिव्यक्ति बस यही है और यह और भी आगे जाती है, वे इसे भगवान् के साथ सम्बन्ध पर भी लागू करते हैं। वे भगवान् से कहते हैं : "अगर तुम वही करो जो मैं चाहता हूं तो मैं कहूंगा कि तुम मुझसे प्यार करते हो और मैं भी तुमसे प्यार करूंगा। लेकिन अगर तुम वह न करो जो मैं चाहता हूं तो मैं बिलकुल न मानूंगा कि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मैं भी, निश्चय ही, तुमसे प्रेम न करूंगा।" बस चीजें ऐसी ही हैं। इसका मतलब यह है कि यह व्यापार बन जाता है।...

और जो इससे भी अच्छा है वह यह है कि अपने-आपसे यह न पूछो कि तुम्हें प्यार मिल रहा है या नहीं, तुम उसके बारे में बिलकुल उदासीन रहो। और तब सच्चे प्रेम का आरम्भ होता है : तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो, इसलिए बिलकुल नहीं कि तुम्हें अपने प्यार का उत्तर मिलता है या दूसरा व्यक्ति भी तुमसे प्यार करता है। ये सब शर्तें—प्रेम नहीं हैं। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार के अलावा कुछ कर ही नहीं सकते। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो। तुम इसकी बिलकुल परवाह नहीं करते कि क्या होगा, तुम अपने प्रेम की भावना से ही पूरी तरह सन्तुष्ट रहते हो। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो।

बाकी सब सौदेबाजी है, प्रेम नहीं।

और फिर, एक बात निश्चित है। तुम जिस क्षण सच्चे प्रेम का अनुभव करते हो, तुम यह प्रश्न ही नहीं करते। यह प्रश्न बिलकुल बचकाना, बेतुका और तुच्छ मालूम होता है। जिस क्षण तुम सच्चे प्रेम का अनुभव करते हो तुम्हें प्रचुर आनन्द और उपलब्धि प्राप्त हो जाती है और तुम्हें किसी उत्तर की जरूरत बिलकुल नहीं रह जाती। तुम प्रेम **होते हो**, और बस। और तुम्हें प्रेम की सन्तुष्टि की प्रचुरता प्राप्त होती है। वहां किसी परस्पर-विनिमय की जरूरत नहीं रहती।

मैं तुमसे कहती हूं, जब तक मन में या भावों में या संवेदनों में हिसाब-किताब रहता है, जब तक कोई हिसाब-किताब रहता है, कम या ज्यादा स्वीकृत हिसाब-किताब, तब तक यह प्रेम नहीं, सौदेबाजी है।...

जिसे लोग "प्रेम" कहते हैं उससे यह सच्चा प्रेम बहुत, बहुत, बहुत दूर है—एक लम्बा रास्ता। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २६२-६३

चैत्य प्रेम की निःस्वार्थ, निष्काम क्रिया

निष्काम, निःस्वार्थ क्रिया संसार में चैत्य चेतना के सबसे सुन्दर रूपों में से है, लेकिन व्यक्ति मानसिक क्रिया-कलाप की सीढ़ी पर जितना ही उठता जाता है, यह क्रिया उतनी ही विरल होती जाती है। क्योंकि बुद्धि के साथ ही आते हैं कौशल और चालाकियां, भ्रष्टाचार और हिसाब-किताब। उदाहरण के लिए, जब एक गुलाब खिलता है तो वह सहज रूप में खिलता है, केवल सुन्दर होने के आनन्द के लिए, सुगन्ध देने, जीवन के आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए खिलता है। वह हिसाब-किताब नहीं करता, उसे इस सबसे कोई लाभ नहीं उठाना होता : वह ऐसा सहज भाव से करता है, होने के, जीने के आनन्द में करता है। मनुष्य को लो, कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़ कर, जैसे ही उसका मन सक्रिय होता है वह अपनी सुन्दरता और चालाकी से लाभ उठाना चाहता है; वह उससे कुछ प्राप्त करना चाहता है, लोगों की प्रशंसा या इससे कहीं अधिक घिनौनी चीज पाना चाहता है। फलतः, चैत्य-दृष्टि से गुलाब मनुष्य से ज्यादा अच्छा है।

हां, यदि तुम सीढ़ी पर और ऊंचे चढ़ो और गुलाब जिस चीज को अचेतन अवस्था में करता है, उसी को सचेतन रूप से करो, तो यह बहुत ज्यादा सुन्दर होगा। लेकिन चीज वही होनी चाहिये : सौन्दर्य का बिना हिसाब के, सहज रूप में खिलना, केवल सत्ता के आनन्द के लिए। यह चीज (कभी-कभी, हमेशा नहीं) छोटे बच्चों में होती है। दुर्भाग्यवश, माता-पिता और वातावरण के असर से बच्चे बहुत छोटी अवस्था में ही हिसाब करना, यानी, स्वार्थी होना सीख लेते हैं।

तुम्हारे पास जो है या तुम जो करते हो उसके बदले कुछ लाभ उठाने की इच्छा संसार में सबसे भद्दी चीजों में से है। और यह सबसे ज्यादा व्यापक है, यह इतनी व्यापक है कि मनुष्य के अन्दर प्रायः सहज बन गयी है। इस तरह हिसाब-किताब करने और लाभ उठाने की इच्छा से बढ़ कर भागवत प्रेम से पूरी तरह मुंह मोड़ लेने वाली चीज और कोई नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २६६

प्रेम की गुणवत्ता

सच्चा प्रेम कैसे किया जाये, यह जानने के लिए क्या प्रकृति का रूपान्तर होना चाहिये?

प्रेम की गुणवत्ता तुम्हारी चेतना के रूपान्तर के अनुपात में ही होती है।

मैं नहीं समझा।

यह तो बच्चों की-सी सरल बात है। यदि तुम्हारी चेतना पशु की चेतना है, तो तुम प्रेम भी पशु के समान ही करोगे। यदि तुम्हारी चेतना एक सामान्य व्यक्ति की चेतना है तो तुम प्रेम भी एक सामान्य व्यक्ति की भांति ही करोगे। यदि वह एक प्रबुद्ध सत्ता की चेतना है तो तुम्हारा प्रेम एक प्रबुद्ध सत्ता का प्रेम होगा, और यदि तुम्हारे पास भगवान् की चेतना है तो तुम भगवान् के समान प्रेम करोगे। बड़ी सरल-सी बात है! मैंने यही कहा है। अतएव, यदि तुम उन्नति और आन्तरिक रूपान्तर के लिए प्रयत्न करके, अभीप्सा और विकास के द्वारा एक चेतना से दूसरी चेतना में प्रवेश कर लेते हो और तुम्हारी चेतना अधिकाधिक विशाल बन जाती है तो तुम जिस प्रेम का अनुभव करोगे वह अधिकाधिक विशाल होगा। बड़ी स्पष्ट बात है यह!

तुम स्वच्छतम जल लेते हो, स्फटिक-सम चट्टानों से झरता हुआ जल, उसे एक बड़े-से पात्र में भरते हो, और फिर, इस पात्र में जरा-सी या अधिक, या बहुत अधिक मिट्टी है। अब तुम यह नहीं कह सकते कि यह वही जल है जो झरने से आया था, यूं तो यह वही है, किन्तु तुमने उसमें इतनी चीजें मिला दी हैं कि वह उस पहले जल से बिलकुल नहीं मिलता! हां तो, प्रेम अपने सारतत्त्व में विशुद्ध, पारदर्शी और पूर्ण वस्तु है। मानव की चेतना में वह काफी सारी मिट्टी से मिल कर गंदला हो जाता है। तो जितनी अधिक मिट्टी होगी उतना ही अधिक वह गंदला होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ११७

मनुष्य बाहरी तौर पर अकेला तभी होता है जब वह 'भागवत प्रेम' के प्रति बन्द होता है। —श्रीमां

वस्तुतः भगवान् से प्रेम करना चाहिये

दूसरे से प्रेम? मैं वहां कह चुकी हूं कि यह असम्भव है। मैंने कहा है कि यदि व्यक्ति यह जानना चाहता है कि प्रेम क्या है तो उसे भगवान् से प्रेम करना चाहिये। शायद तभी वह यह जान सकता है कि प्रेम क्या है। मैंने कहा है कि व्यक्ति जिससे प्रेम करता है उसी जैसा बन जाता है। अतएव, यदि वह भगवान् से प्रेम करता है तो धीरे-धीरे, प्रेम के लिए प्रयत्न करते हुए अधिकाधिक भगवान् जैसा बनने लगता है, और तब वह भागवत प्रेम के साथ अपना तादात्म्य भी स्थापित कर सकता है और उसे जान भी सकता है, अन्यथा नहीं।

अपरिहार्य रूप से, दो मनुष्यों के बीच का प्रेम, वह चाहे जैसा भी हो, सदा अज्ञान, समझ के अभाव, दुर्बलता और वियोग की उसी दुःखद भावना से बना होता है। यह तो मानों ऐसा हुआ कि व्यक्ति एक अभूतपूर्व 'वैभव' के साक्षात् सान्निध्य में आना चाहे और आरम्भ में ही अपने और उस 'वैभव' के बीच एक परदा, दो परदे, तीन परदे डाल ले और इस बात पर आश्चर्य करे कि उसे असली वस्तु तो दिखायी नहीं पड़ी, उसका एक धुंधला-सा आभास ही मिला। इसके लिए पहला कार्य है परदों को हटा देना, इन सबको निकाल देना और आगे बढ़ कर अपने-आपको उस 'वैभव' की उपस्थिति में पाना। और तभी तुम जानोगे कि वह 'वैभव' क्या है। किन्तु यदि तुम अपने और उसके बीच में परदे-पर-परदे डाल लो तो उसे कभी न देख पाओगे। तुम्हें एक धुंधली-सी प्रतीति हो सकती है जैसे : "ओह! कोई चीज है," बस, इतना ही।

स्वाभाविक है, ऐसे लोग भी हैं जो इस 'वैभव' की परवाह नहीं करते, जो इसकी ओर पीठ फेर लेते हैं और अपनी सहज प्रवृत्तियों में ही निवास करते हैं, जो पशुवत् होते हैं, उनसे कुछ अधिक पूर्ण। हम इनकी बात नहीं कर रहे। हमें इन्हें इनके हाल पर ही छोड़ देना होगा, ये जो चाहें करते रहें, इसका बिलकुल कोई महत्त्व नहीं। इनका हम पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। मैंने ये बातें इनके लिए नहीं लिखी हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ११६

... 'भागवत प्रेम' ही महान् उपचार है। —श्रीमां

मात्र प्रेम करने से ही प्रसन्न रहना

अतः, सर्वोत्तम पथ यह है कि जब प्रेम आये, चाहे जिस किसी रूप में वह आये, उसे भेदने की कोशिश की जाये और उसके बाह्य रूप को भेद कर उस दिव्य तत्त्व को खोजा जाये जो उसके पीछे है और जिसके कारण उसका अस्तित्व है। स्वाभाविक है कि यह मोहपाशों और कठिनाइयों से भरा हुआ है, पर यह है अधिक फलदायी। यानी, प्रेम करना बन्द करने के स्थान पर, चूंकि मनुष्य गलत रूप में प्रेम करता है, उसे गलत रूप में प्रेम करना बन्द करना होगा और अच्छे ढंग से प्रेम करने की इच्छा करनी होगी।

उदाहरणार्थ, मनुष्यों का आपसी प्रेम, अपने सभी रूपों में, अपने बच्चों के लिए माता-पिता का, माता-पिता के प्रति बच्चों का, भाइयों और बहनों का, मित्रों और प्रेमियों का प्रेम पूरी तरह अज्ञान, स्वार्थपरता और दूसरे दोषों से, जो मनुष्य की सामान्य कमियां हैं, दूषित होता है; अतएव, पूरी तरह प्रेम करना बन्द कर देने की जगह—जो बहुत कठिन भी है, जैसा कि श्रीअरविन्द कहते हैं, जो महज हृदय को सुखा देगा और उससे कोई लाभ भी नहीं होगा—हमें यह सीखना होगा कि किस प्रकार अधिक अच्छे रूप में प्रेम किया जाता है : भक्ति के साथ, आत्म-दान, आत्म-त्याग के साथ प्रेम करना, और संघर्ष करना, स्वयं प्रेम के विरुद्ध नहीं, बल्कि उसके विकृत रूपों के विरुद्ध : स्वयं अपने लिए ही झपटने के विरुद्ध, आसक्ति, अधिकार, ईर्ष्या के सभी रूपों के विरुद्ध, और समस्त भावनाओं के विरुद्ध, जो इन मुख्य वस्तुओं के साथ लगी रहती हैं। अधिकार करने और आधिपत्य जमाने की कामना न करना; और अपनी इच्छा, अपनी सनकें और अपनी कामनाएं लादने की चाह न करना; लेने की, पाने की इच्छा नहीं, बल्कि देने की इच्छा करना : दूसरे के प्रत्युत्तर पर आग्रह न करना, बल्कि अपने निजी प्रेम से ही सन्तुष्ट रहना; अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख की तथा अपनी व्यक्तिगत कामना की पूर्ति की चेष्टा न करना, बल्कि अपना प्रेम और स्नेह देने से ही तृप्त रहना; और प्रत्युत्तर की मांग न करना। मात्र प्रेम करने से ही प्रसन्न रहना, उससे अधिक कुछ नहीं।

यदि कोई ऐसा करे तो वह एक बहुत बड़ा कदम आगे उठाता है और वह, इस मनोभाव के द्वारा धीरे-धीरे, स्वयं इस भावना के अन्दर ही और आगे बढ़ सकता है, और एक दिन यह अनुभव प्राप्त कर सकता है कि

प्रेम कोई व्यक्तिगत वस्तु नहीं है; प्रेम एक विश्वव्यापी दिव्य भावना है जो तुम्हारे अन्दर कम या अधिक उत्तम तरीके से अभिव्यक्त होती है, पर जो अपने सार-तत्त्व में एक दिव्य वस्तु है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३६२-६३

पहला पग है स्वार्थी होना बन्द कर देना

पहला पग है स्वार्थी होना बन्द कर देना। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यही बात है, केवल उन लोगों के लिए ही नहीं जो योग करना चाहते हैं बल्कि उन लोगों के लिए भी जो साधारण जीवन जीते हैं : यदि कोई यह जानना चाहे कि कैसे प्रेम करना चाहिये तो उसे सबसे पहले अपने-आपसे प्रेम नहीं करना चाहिये, और सबसे बढ़ कर, स्वार्थपरता के साथ प्रेम नहीं करना चाहिये; बदले में कोई चीज जबर्दस्ती वसूल किये बिना अपने प्रेमपात्र के प्रति अपने-आपको अर्पण कर देना चाहिये। यह अपने-आपसे ऊपर उठने के लिए और ऐसा जीवन यापन करने के लिए प्रारम्भिक साधना है जो पूरी तरह स्थूल नहीं है।

योग करने के लिए हम इसके साथ कुछ और जोड़ सकते हैं; वह है, जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा है, प्रेम के इस सीमित तथा मानवीय रूप को भेद कर उस दिव्य प्रेम के तत्त्व को खोज निकालने का संकल्प जो इसके पीछे विद्यमान है। तब इसका परिणाम पाना सुनिश्चित हो जाता है। यह अपना हृदय सुखा देने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है। यह सम्भवतः थोड़ा अधिक कठिन है पर प्रत्येक दृष्टि से यह अधिक अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार, अहंकारपूर्ण ढंग से दूसरों को तकलीफ पहुंचाने के बदले, हां, हम उन्हें उनकी गतिविधि में शान्त-स्थिर छोड़ सकते हैं और अपनी इच्छा दूसरों पर लादे बिना स्वयं अपने को रूपान्तरित करने का प्रयत्न कर सकते हैं, यह साधारण जीवन में भी किसी उच्चतर तथा कुछ अधिक सामञ्जस्यपूर्ण वस्तु की ओर एक पग आगे बढ़ाना है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३६३

आत्मदान के बिना प्रेम होता ही नहीं; लेकिन मानव प्रेम में आत्मदान बहुत विरल होता है, वह स्वार्थों और मांगों से भरा रहता है। –श्रीमां

प्रेम का मानवीय रूप

इन सब "संवेदनों" (इन्हें क्या कहा जाये?) में एक प्रकार का स्पन्दन होता है जिसके केन्द्र में एक बड़ी मूलभूत वस्तु होती है, जिस पर मानों तहों-पर-तहें चढ़ी हुई हैं जो उसे छुपाये हुए हैं। उसके ठीक केन्द्र में जो स्पन्दन होता है वह बिलकुल यही होता है और ज्यों ही वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए फूल उठता है, त्यों ही वह विकृत हो जाता है। प्रेम के लिए यह बात बिलकुल स्पष्ट है। अधिकतर व्यक्तियों में यह बाहरी हो जाता है, ऐसा जिसका स्वभाव आन्तरिक स्पन्दन से काफी भिन्न होता है, कारण, यह एक ऐसी वस्तु है जो वापिस अपने में सिमट जाती है, कठोर हो जाती है और अधिकार की अहंकारपूर्ण क्रिया के वशीभूत होकर प्रेमपात्र को अपनी ओर खींचना चाहती है। तुम प्रेम पाना **चाहते हो**। तुम कहते हो : "मैं उस व्यक्ति से प्रेम करता हूं," किन्तु साथ ही वह वस्तु जो तुम चाहते हो, वह भावना जिसमें तुम निवास करते हो, यह होती है : "मैं चाहता हूं कि वह भी मुझसे प्रेम करे।" अतः यह एक ऐसी विकृति है जो लगभग उतनी ही बड़ी है जितनी कि घृणा की है, जिसका अर्थ है कि व्यक्ति अपनी प्रेमपात्र वस्तु को नष्ट करना चाहता है जिससे कि वह स्वयं उससे बंधा न रहे। कारण, जो तुम चाहते हो वह तुम्हें अपने प्रेमपात्र से नहीं मिलता तो तुम उसे नष्ट करना चाहते हो ताकि तुम स्वतन्त्र हो जाओ। दूसरी दशा में तुम एक प्रकार के आन्तरिक क्रोध के अधीन होकर अपने-आपको कठोर बना लेते हो, क्योंकि तुम अपने प्रेमपात्र को नहीं पा सकते, उसे आत्मसात् नहीं कर सकते। और सच्ची बात तो यह है कि *(माताजी हंसती हैं)* गहनतर सत्य के दृष्टिकोण से इनके रूपों में अधिक भेद नहीं है! केवल तभी जब केन्द्रीय स्पन्दन विशुद्ध रहता है और अपनी प्रारम्भिक विशुद्धता में अपने-आपको अभिव्यक्त करता है... वह सच्चा रहता है। भौतिक रूप में यह अनूदित होता है आत्म-दान में, आत्म-विस्मृति में, आत्मा की उदारता में। और यही सच्ची क्रिया है। किन्तु जिसे साधारणतया "प्रेम" कहा जाता है वह सच्चे 'प्रेम' के केन्द्रीय स्पन्दन से उतनी ही दूर है जितनी कि घृणा; अन्तर केवल इतना है कि एक सिकुड़ता है, कठोर और ठोस बन जाता है और दूसरा प्रहार करता है। बस इसी से सारा अन्तर होता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २५२-५३

भागवत प्रेम हमेशा उपस्थित रहता है

भागवत 'प्रेम' तो अपनी पूर्ण तीव्रता के साथ एक विराट् शक्ति के रूप में सदैव उपस्थित रहता है। किन्तु अधिकतर मनुष्य—निन्यानबे प्रतिशत —कुछ भी अनुभव नहीं करते! वे जो अनुभव करते हैं वह ठीक उसी अनुपात में होता है जो वे हैं, और उनमें कितनी ग्रहणशीलता है। उदाहरण के लिए, कल्पना करो कि तुम एक ऐसे वायुमण्डल में स्नान कर रहे हो जो भागवत 'प्रेम' से पूर्णतया स्पन्दित है—और तुम उस सबसे बिलकुल भी अभिज्ञ नहीं हो। कभी-कदास, बहुत ही कम, कुछ सेकेण्ड के लिए अचानक ही तुम्हें "किसी वस्तु" की अनुभूति होती है। तुम कहते हो : "ओह, भागवत 'प्रेम' मेरी ओर आया था!" बात हंसी की है! जब कि वास्तव में हुआ यह था कि किसी-न-किसी कारण तुम जरा-से खुले थे, अतएव तुम्हें उसकी अनुभूति हुई। वह तो भागवत 'चेतना' की तरह, सदा ही उपस्थित रहता है। वह भी हर समय अपनी पूर्ण तीव्रता के साथ उपस्थित रहती है। पर व्यक्ति उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता; अथवा इसी प्रकार बीच-बीच में अनुभव करता है : अचानक ही जब व्यक्ति कुछ अच्छी अवस्था में होता है तो उसे किसी वस्तु का अनुभव होता है और वह कहता है : "ओह, भागवत 'चेतना', भागवत 'प्रेम' मेरी ओर मुड़े हैं, मेरी ओर आये हैं!" पर बात ऐसी बिलकुल नहीं है। व्यक्ति कहीं जरा-सा खुला होता है, बहुत जरा-सा, कभी-कभी सूई की नोक जितना और स्वभावतया, शक्ति उसमें बड़े वेगपूर्वक प्रवेश करती है। कारण, यह सक्रिय वायुमण्डल जैसा है, जब कभी ग्रहण करने की सम्भावना हो तो उसे ग्रहण कर लिया जाता है। यह बात तो सभी भागवत वस्तुओं के साथ है। वे उपस्थित हैं, केवल व्यक्ति उन्हें ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह स्वयं बन्द होता है, उसके अन्दर कोई रुकावट होती है, वह अधिकतर अन्य वस्तुओं में व्यस्त रहता है। अधिकतर तो व्यक्ति अपने से ही भरा रहता है, चूंकि व्यक्ति अपने-आपसे भरा रहता है, इसलिए किसी अन्य वस्तु के लिए स्थान नहीं रहता। व्यक्ति बड़े सक्रिय रूप में *(माताजी हंसती हैं)* अन्य वस्तुओं में व्यस्त रहता है। वह वस्तुओं से इतना भरा-घिरा रहता है कि उसमें भगवान् के लिए कोई स्थान नहीं रहता। किन्तु 'वे' उपस्थित हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १५४-५५

जीवन के आघात और भागवत प्रेम

वे सभी लोग जो दिव्य पूर्णता के लिए अभीप्सा करते हैं यह जानते हैं कि जो आघात भगवान् अपने असीम प्रेम और कृपा के कारण हमें पहुंचाते हैं वे हमारी उन्नति के सबसे अधिक निश्चित और द्रुत मार्ग हैं। उन्हें लगता है कि आघात जितना अधिक कठोर होगा भागवत 'प्रेम' उतना ही अधिक होगा।

इसके विपरीत, सामान्य मनुष्य भगवान् से सदा एक सरल, अनुकूल और सफल जीवन की मांग करते हैं। प्रत्येक वैयक्तिक तुष्टि में वे भगवान् की दयालुता का संकेत देखते हैं और, इसके विपरीत, यदि उन्हें अपने जीवन में असफलता और दुर्भाग्य का सामना करना पड़े तो वे शिकायत करते हैं और भगवान् से कहते हैं: "तुम मुझसे प्रेम नहीं करते!"

इस अज्ञानपूर्ण और गंवारू वृत्ति के विरुद्ध श्रीअरविन्द अपने 'प्रिय' से कहते है: "प्रहार कर, कठोर प्रहार कर, ताकि मेरे प्रति तेरे प्रेम की तीव्रता मुझे अनुभव हो।"...

जिन घटनाओं की हम प्रतीक्षा नहीं करते, जिनकी हम आशा या इच्छा नहीं करते, जो हमारी इच्छाओं के विरुद्ध होती हैं उन्हें ही हम अज्ञानवश दुर्भाग्य कहते हैं और फिर रोते-धोते हैं। किन्तु यदि हम जरा अधिक बुद्धिमान् बन कर इन घटनाओं के गभीर परिणामों का निरीक्षण करें तो पता चलेगा कि ये हमें अपने भगवान् की ओर, अपने प्रिय की ओर, शीघ्र ले जाती हैं, जब कि सुखकर और सुगम परिस्थितियां हमें रास्ते पर भटकने के लिए उत्साहित करती हैं, जो सुख के फूल मार्ग में पड़े रहते हैं उन्हें चुनने के लिए हमें वहीं रोक देती हैं। हम अत्यधिक दुर्बल हैं और इतने सच्चे नहीं हैं कि उन्हें पूरे संकल्प के साथ अस्वीकार कर दें ताकि वे हमें आगे बढ़ने से रोक न सकें।

यदि व्यक्ति बिना डगमगाये अपनी सफलता और उससे सम्बन्धित सभी छोटे-मोटे सुखों में स्थिर रहना चाहता है तो उसे काफी मजबूत होने के साथ-साथ रास्ते पर काफी आगे बढ़ा हुआ भी होना चाहिये। किन्तु जो लोग इसे कर सकते हैं, जो लोग मजबूत होते हैं, वे सफलता के पीछे नहीं दौड़ते, न उसकी चाह करते हैं, बल्कि वे उदासीनता के साथ इसे स्वीकार करते हैं। कारण, वे दुःख और दुर्भाग्य के कोड़ों का मूल्य जानते हैं।

किन्तु अन्ततः यह जानने के लिए कि हम लक्ष्य के निकट हैं सच्ची वृत्ति, लक्षण तथा प्रमाण होंगे—आत्मा की पूर्ण समता, जो हमें सफलता और असफलता को, सौभाग्य और दुर्भाग्य को, प्रसन्नता और अप्रसन्नता को समान रूप से शान्तिपूर्ण आनन्द के साथ स्वीकार करने के योग्य बनाती है। कारण, तब सब चीजें हमारे लिए ऐसे चमत्कारपूर्ण उपहार बन जाती हैं जिन्हें प्रभु अपनी असीम हित-चिन्ता के भाव में हम पर बरसाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ६५-६६

भागवत प्रेम ही रूपान्तर की चाबी है

तुम्हें जो करना चाहिये वह यह है : अपने-आपको भागवत 'कृपा' के सुपुर्द कर दो क्योंकि भगवान् ने संसार को ऊपर उठाने के लिए पहली बार अविद्या में घुस कर 'कृपा' और 'प्रेम' के रूप को ही ओढ़ा था। 'भगवान् का प्रेम' 'रूपान्तर' की परम शक्ति है। उस प्रेम में यह शक्ति इसलिए है क्योंकि उसने अपने-आपको 'रूपान्तर' के लिए ही संसार को दिया है और इसीलिए हर जगह अभिव्यक्त है। जगत् को अपने प्रथम 'सत्य' की ओर वापिस लाने के लिए ही उसने अपने-आपको न केवल मनुष्य में, बल्कि एकदम तमोमय 'जड़तत्त्व' के अणु-परमाणुओं में भी भर दिया है। इस अवतरण को ही भारतीय शास्त्रों में परम बलिदान कहा गया है। लेकिन यह केवल मानव दृष्टि से बलिदान है। मानव मन सोचता है कि अगर उसे ऐसा कुछ काम करना पड़ता तो उसकी दृष्टि से यह बहुत बड़ा बलिदान होता। लेकिन भगवान् चाहे जो और जितने भी "बलिदान" क्यों न देते रहें, वे छोटे नहीं हो सकते, उनका अनन्त तत्त्व कभी कम नहीं हो सकता...। जैसे ही तुम भागवत प्रेम की ओर खुलते हो, तुम्हें 'रूपान्तर' की शक्ति भी मिल जाती है। लेकिन तुम इसकी मात्रा को नहीं नाप सकते। असली महत्त्वपूर्ण चीज है सच्चा सम्पर्क; क्योंकि तब तुम देखोगे कि उसके साथ सच्चा सम्पर्क तुम्हारी सारी सत्ता को भर देने के लिए काफी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १८४

'भागवत प्रेम' सबमें वह शान्ति और सन्तोष ला सकता है जो कृपालुता से आते हैं। —श्रीमां

रूपान्तर के लिए प्रेम सबसे समर्थ शक्ति है

... यदि तुम उस शक्ति या सामर्थ्य के स्वभाव को जानना या समझना चाहते हो, जो इस रूपान्तर को अनुमति देती है या सम्पन्न करती है (विशेषकर अशुभ के विषय में किन्तु कुछ हद तक कुरूपता के विषय में भी), तो तुम देखोगे कि प्रेम सबसे अधिक बलशाली और समग्र शक्ति है—समग्र इस अर्थ में कि यह सब अवस्थाओं में प्रयुक्त की जाती है। यह पवित्रीकरण की शक्ति से भी अधिक बलशाली है जो गलत इच्छा को समाप्त कर देती है और किसी-न-किसी प्रकार विरोधी शक्तियों को अपने वश में कर लेती है, पर रूपान्तर की सीधी शक्ति उसमें नहीं होती। पवित्रीकरण की शक्ति **पहले** नष्ट करती है ताकि बाद में रूपान्तर हो सके। वह एक आकार को नष्ट करती है ताकि उससे अधिक अच्छा आकार बना सके, जब कि प्रेम को रूपान्तर के लिए किसी चीज को नष्ट करने की जरूरत नहीं पड़ती। उसके अन्दर रूपान्तर की सीधी शक्ति होती है। प्रेम एक अग्निशिखा के समान है जो कठोर वस्तु को लचकदार बना देती है। और फिर इस लचकदार वस्तु को भी एक प्रकार के पवित्र बाष्प में बदल देती है—यह वस्तु को नष्ट नहीं करती, उसे रूपान्तरित करती है।

अपने सार रूप में और स्रोत में प्रेम एक ज्वाला है, एक सफेद ज्वाला, जो **सब** बाधाओं को जीत लेती है। तुम स्वयं इसे अनुभव कर सकते हो। तुम्हारी सत्ता में कोई भी कठिनाई क्यों न हो, एकत्रित हुई भूलों, अयोग्यताओं तथा अज्ञान और दुर्भावनाओं का कितना भी बोझ क्यों न हो, इस पवित्र, साररूप, सर्वोच्च प्रेम का एक **क्षण** भी मानों इन सबको एक सर्वसमर्थ ज्योति में विलीन कर देता है। इसका एक क्षण और सम्पूर्ण अतीत समाप्त हो जाता है, यदि तुम इसके सार को क्षण-भर के लिए भी छू लो तो सारा बोझ हट जाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ८२

जब तक अहं है, आदमी प्रेम नहीं कर सकता।

केवल प्रेम ही 'प्रेम' कर सकता है, केवल 'प्रेम' ही अहं पर विजय पा सकता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १३३

प्रेम की गति मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है और सम्भवतः मानवजाति की अपेक्षा अन्य सृष्टियों में कम विकृत है। पुष्पों और वृक्षों को देखो। जब सूर्य अस्त होता है और सब कुछ नीरव हो जाता है, तब क्षण-भर के लिए बैठो और अपने-आपको प्रकृति के साथ एक कर दो : तुम अनुभव करोगे कि पृथ्वी से, वृक्षों की जड़ के नीचे से प्रगाढ़ प्रेम और कामना से पूर्ण एक अभीप्सा ऊपर उठ रही है और यह अभीप्सा ऊपर की ओर बढ़ती हुई तथा वृक्षों के तन्तुओं में से सञ्चार करती हुई उनकी उच्चतम शाखाओं तक में उठ रही है—उस वस्तु के लिए कामना जो प्रकाश लाती और सुख फैलाती है, उस प्रकाश के लिए जो चला गया है, जिसे वे वापस चाहते हैं। उनमें यह चाह इतनी पवित्र और तीव्र होती है कि यदि तुम वृक्षों में होने वाली गति को अनुभव कर सको तो तुम्हारी अपनी सत्ता भी उस शान्ति, उस प्रकाश और प्रेम के लिए हार्दिक प्रार्थना करने लगेगी जो अभी तक यहां अभिव्यक्त नहीं है। एक बार भी यदि तुम इस विशाल, विशुद्ध और सच्चे दिव्य प्रेम के संस्पर्श में आ जाओ, यदि तुम थोड़ी देर के लिए भी इसके लघुतम रूप का ही अनुभव कर पाओ, तो तुम यह अनुभव कर लोगे कि मनुष्य की वासना ने इसके स्वरूप को कितना नीच बना डाला है। मानवप्रकृति में यह क्षुद्र, पाशविक, स्वार्थमय, हिंसक और कुरूप हो गया है, या फिर यह दुर्बल और भावुक, अत्यन्त तुच्छ भावों से भरा हुआ, क्षणभंगुर, बाहरी और शोषक बन गया है। और इस नीचता और पशुता को अथवा इस स्वार्थ से भरी हुई दुर्बलता को लोग प्रेम कहते हैं!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ८१-८२

सूत्र

तुम उस प्रेम से खुश नहीं होते जो कोई और तुम्हारे लिए अनुभव करता है। तुम्हें औरों के लिए जो प्रेम अनुभव होता है वह तुम्हें सुखी बनाता है; क्योंकि जो प्रेम तुम औरों को देते हो वह तुम्हें भगवान् से प्राप्त होता है और भगवान् अविरत और बिना चूके प्रेम करते हैं।

*

'सच्चा प्रेम' जो तुष्टि देता और आलोकित करता है, वह नहीं है जिसे तुम पाते हो, बल्कि वह है जो तुम देते हो। और 'परम प्रेम' ऐसा प्रेम है जिसका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता, वह ऐसा प्रेम है जो प्रेम करता है क्योंकि वह प्रेम करने के सिवा कुछ कर ही नहीं सकता।

*

प्रेम केवल एक ही है—'भागवत प्रेम'; और उस 'प्रेम' के बिना कोई सृष्टि न होती। सब कुछ उसी 'प्रेम' के कारण विद्यमान है। और जब हम अपने *निजी प्रेम* को खोजते हैं, जिसका कोई अस्तित्व नहीं, तब हम 'प्रेम' का अनुभव नहीं करते; उस एकमात्र 'प्रेम' का जो 'भागवत प्रेम' है और समस्त सृष्टि में रमा हुआ है।

*

कहा जाता है कि तुम जिससे प्यार करते हो उसके जैसा बन जाते हो, लेकिन भगवान् के बारे में यह भी सच है कि तुम 'उनके' साथ तभी हमेशा रह सकते हो जब 'उनके' जैसे बन जाओ।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४ से

यदि तुम क्षुद्रतम कीड़े और अधमतम अपराधी से प्रेम नहीं कर सकते तो तुम यह कैसे सोच सकते हो कि तुमने अपनी आत्मा में भगवान् को स्वीकार कर लिया है?

*

संसार को अलग रख कर भगवान् के साथ प्रेम करना उनकी तीव्र किन्तु अपूर्ण आराधना है।

*

मैंने देखा है कि भगवान् ने मुझे जो कुछ नहीं दिया वह अपने प्रेम तथा ज्ञान के वश ही रोक रखा है। यदि मैंने उस समय उसे पा लिया होता तो शायद किसी महान् अमृत को एक महान् विष में बदल दिया होता। फिर भी कभी-कभी, जब हम हठ करते हैं तो, भगवान् हमें विष पीने के लिए दे देते हैं ताकि हम उससे मुंह मोड़ना सीख सकें तथा ज्ञानपूर्वक उनकी दिव्य सुधा और अमृतरस का आस्वादन कर सकें।

*

जगद्गुरु भगवान् का शिष्य बनना, जगत्पिता भगवान् का पुत्र होना, जगन्माता भगवान् का स्नेह पाना, दिव्य सुहृद् का हाथ पकड़े रहना, अपने दिव्य सहचर तथा बाल-सखा के साथ हंसना-खेलना, स्वामी भगवान् की आनन्दपूर्वक सेवा करना, अपने दिव्य प्रेमी से हर्षातिरेक के साथ प्रेम करना—मानव शरीर में जीवन के ये सात प्रकार के आनन्द हैं। क्या तू इन सबको एक ही सर्वोत्तम और इन्द्रधनुषी रंग के सम्बन्ध के अन्दर युक्त कर सकता है? तब तुझे किसी स्वर्ग की आवश्यकता न रहेगी और तू अद्वैतवादी की मुक्ति को भी अतिक्रम कर जायेगा।

*

मेरे प्रेमी ने मेरे पाप के वस्त्र को उतार लिया और मैंने उसे खुशी से गिर जाने दिया। तब उन्होंने मेरे पुण्य के वस्त्र को खींचा, पर मैं लज्जित और भयभीत हो उठा और उन्हें रोक दिया। परन्तु जब उन्होंने उसे मुझसे जबर्दस्ती छीन लिया केवल तभी मुझे पता चला कि मेरी अन्तरात्मा मुझसे कैसे छिपी हुई थी।

*

मुझे अपने पड़ोसी से प्यार करना चाहिये, पर इसलिए नहीं कि वह हमारे

पड़ोस में रहता है,—क्योंकि आखिर पड़ोस में और दूर में क्या रखा है? और न इसलिए कि धर्म मुझे यह सिखाते हैं कि वह मेरा भाई है,—क्योंकि उस भ्रातृत्व की जड़ कहां है? बल्कि इसलिए कि वह स्वयं मेरी आत्मा है। पड़ोस और दूरी शरीर को प्रभावित करते हैं पर हृदय उनसे परे चला जाता है। भ्रातृत्व रक्त का, देश का, धर्म का या मानवता का होता है, पर जब स्वार्थ अपनी परिपूर्ति के लिए मचलता है, तब इस भ्रातृत्व का क्या हाल होता है? जब मनुष्य भगवान् में निवास करता है और अपने मन, हृदय और शरीर को उनकी विश्वव्यापी एकता की प्रतिमूर्ति में बदल देता है केवल तभी उस गभीर, निःस्वार्थ एवं दुर्धर्ष प्रेम को पाना सम्भव होता है।

*

जिस जीव ने उच्चतम आनन्द को हस्तगत कर लिया है उसके लिए जीवन कोई अशुभ वस्तु या दुःखदायी भ्रम नहीं हो सकता; उसके लिए तो सारा जीवन ही दिव्य 'प्रेमी' तथा 'बालसखा' का कलकल करता प्रेम और हास्य बन जाता है।

*

दो कार्य हैं जिनसे भगवान् अपने सेवक से पूर्णतः सन्तुष्ट होते हैं : एक तो मौन पूजा-भाव के साथ उनके मन्दिर में झाड़ू लगाना और दूसरा, मानवता के अन्दर उनकी दिव्य संसिद्धि के लिए संसार के युद्धक्षेत्र में संग्राम करना।

*

जिसने मानव प्राणियों की थोड़ी-सी भी भलाई की है वह, चाहे सबसे निकृष्ट पापी ही क्यों न हो, भगवान् द्वारा अपने प्रेमियों और सेवकों की श्रेणी में स्वीकृत होता है। वह शाश्वत प्रभु के मुखमण्डल के दर्शन अवश्य पायेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १० से

प्रेम चिरन्तन स्तरों से उतरा एक दिव्य अनुग्रह है

प्रेम चिरन्तन स्तरों से उतरा एक दिव्य अनुग्रह है।
अधम समर्थताओं द्वारा जिसे विक्षत, विकृत कर उपहासित किया जाता है
वे उसका नाम और रूप और प्रहर्ष चुरा दुरुपयोग करती हैं
तब भी वह देवांश है जिसके द्वारा सब रूपान्तरित हो सकता है।
जिससे हमारे अचित् तत्त्व में एक रहस्य जाग जाता है,
एक आत्म-सुख जन्मता है जो हमारे जीवन का नवनिर्माण कर देता है।
प्रेम हमारे अन्तर में एक अप्रस्फुटित पुष्प-सम बसता है,
यह अन्तरात्मा में एक तत्कालीन मुहूर्त की प्रतीक्षा करता है,
या अपनी मोह-निद्रा के वश हो, विचारों और वस्तुओं के मध्य रमता है
यह बाल-देवता क्रीड़ा में मग्न अपने को खोजा करता है
स्वयं को अनेक हृदयों और मनों और जीवित आकारों में खोजता है :
वह एक संकेत हित तनिक ठहरता है जिससे उसे पहचान सके
और जब संकेत पा जाता है, तो एक वाणी के प्रति अविचारी ढंग से जाग जाता है,
एक चितवन, एक स्पर्श, मुख के किसी भाव के प्रति सचेत हो उठता है
उसकी पहचान का साधन यह मन्द भौतिक मन है
जो स्वयं दिव्य अन्तर्दृष्टि को अब बिसार चुका है,
यह बहिर्मोहिनी के किसी चिह्न को धर लेता है
जो जड़-प्रकृति के संकेतों की भीड़ में उसे मार्ग दिखाता है,
पार्थिव प्रतिकृतियों में दिव्य सत्यों को पढ़ता है,
यह निज देवांश के लिए ही उस छवि की कामना करता है,
आकृति की अमरताओं के विषय में पूर्वानुमान लगाता है,
और देह को अन्तरात्मा के गठित आकार-सम लेता है।...
दिव्य प्रभु से अति दूर हो, दिव्य प्रेम यहां निज सत्य खोजता है,
पर भौतिक जड़ जीवन अन्धा है और देह के यन्त्र धोखा दे जाते हैं
और यहां पर महाशक्तियां हैं जो पतित करने हित श्रमरत रहती हैं।
तथापि दर्शन मिल सकता है, आनन्द प्राप्त हो सकता है।
पर वह पात्र विरला ही होता है जो प्रेम की अमर मदिरा के उपयुक्त हो,
प्रभु-जन्म को वहन कर सके ऐसा पात्र मिलना दुर्लभ है;
एक सहस्त्र वर्षों तक एक जीवात्मा को तैयार कर

एक सर्वोच्च प्रभु के अवतरण हित उस प्राणवान् सांचे को ढाला जाता है।
'सावित्री', खण्ड ५, प्रेमाख्यान, पृ. ३९७-९८

सुदूर की परात्पर दिव्यता का यहां प्रेम ही देवदूत है;
हमारी सकल पृथ्वी रज-कण से आरम्भ हो नभ में समाप्त होती है
और दिव्य प्रेम जो कभी पशु-कामना बन विकसित हुआ था,
तब तन्मय अनुरागी हृदय में एक मधुर उन्माद बन जाता है,
फिर प्रसन्नचित्त में एक गम्भीर सहचारी भाव बन उदित होता है
और एक विशाल आध्यात्मिक अभीप्सा का आकाश बन जाता है।
यह एक एकाकी आत्म-सत्ता परम कैवल्यहित व्याकुल होती है,
मानव-प्रेम में डूबा हृदय अब प्रभु-प्रेम से प्रमुदित होता है,
यह काया उसका कक्ष एवं उसका देवालय बन जाती है।
तब हमारी सत्ता पृथक्ता के भाव से मुक्त हो जाती है;
अखिल समष्टि वह स्वयं है, अब सकल विश्व प्रभुमय हो जाता है :
एक दिव्य प्रेमी अपने वैकुण्ठ के द्वार से नीचे झुक आता है
और अखिल विश्व को वह अपने अद्वितीय वक्ष में भर लेता है।
तब इस अचित् रात्रि और अज्ञ मृत्यु का व्यवसाय समाप्त हो जायेगा :
जब एकात्मता की विजय होगी, और संघर्ष पराजित होगा
और समस्त ज्ञात हो जायेगा एवं सकल सत्प्रेम के आलिंगन में बंध जायेगा
तब कौन अज्ञानी अविद्या और पीड़ा से ग्रसित हो पीछे मुड़ देखेगा?...
इस धरा के जीवनहित इस प्रेम को जीवित रहना होगा;
क्योंकि इस पृथ्वी और देवलोक को जोड़ती दीप्तिमयी कड़ी प्रेम ही है,
सुदूर की परात्पर दिव्यता का यहां प्रेम ही देवदूत है;
क्योंकि पुरुषोत्तम को प्रेम से ही मानव अधिकारपूर्वक धर पाता है।"
'सावित्री', पृ. ६३२, ६३३
"मैं निज अन्तरप्राण में सत्य-अर्थ के प्रति जाग गयी हूं
कि प्रत्येक के प्रति प्रेम और एकत्व की अनुभूति पाना ही जीवन है
और हमारे इस दिव्य रूपान्तर की यही जादुई कुंजी है,
मैं इसी सम्पूर्ण सत्य को जानती या खोजती हूं, हे महात्मन्।"
'सावित्री', पृ. ७२४

"उदारता का क्या अर्थ है?" पर सेमिनार

जब मैंने उदारता शब्द का अर्थ गौर से देखना चाहा तो इसके पहले कि मैं इसका अर्थ समझने के लिए उसके अन्दर डूबूं, मैंने अनुभव किया कि विशालता का एक रमणीय दृश्य मेरे चारों ओर मुझे सबके प्रति दयालुता से, सद्हृदयता और स्नेह से भर रहा है। यह एक विशालता की अनुभूति थी, ऐसी विशालता की जो मन की, हृदय की, सम्बन्धों की मिली-जुली विशालता थी। 'उदारता' का शब्दकोश में अर्थ है सद्भाव और दयालुता। यह एक ऐसा गुण है जिसकी हमें अपने सांसारिक दैनन्दिन जीवन में—चाहे वह भौतिक, भावुक और मानसिक—जो भी हो, सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है।

'उदारता' की गहराई में जाने और वैसा ही बन जाने में रुचि रखने वाले सभी पुरुष और महिलाएं, सोसायटी महिला-परिषद् के इस वार्षिक समारोह में भाग लेने के लिए आमन्त्रित हैं। यह समारोह पुदुच्चेरी में नवम्बर २०१६ की २१, २२, २३ तारीखों में (शुक्रवार, शनिवार, रविवार को) सोसायटी हाउस, 11, Saint Martin Street, Puducherry 605001 में सम्पन्न होगा।

जिज्ञासा के लिए सम्पर्क-सूत्र :
मन्त्री, महिला-परिषद्, श्रीअरविन्द सोसायटी।
निवास के लिए सम्पर्क-सूत्र :
Accommodation Section: Phone (0413) 2336396/98,
ईमेल : accommodation@aurosociety.org

उदारता जीवन को, बिना ध्यान आकर्षित किये सुवासित करती है। —श्रीमां

Awakening
A Monthly Bulletin of the Women's Council of Sri Aurobindo Society
Subscription Rates

India	1 Year	3 Years	5 Years
	₹ 100	₹ 280	₹ 470
Overseas	US $ 10	US $ 30	US $ 50

The amount should be sent in favour of 'Sri Aurobindo Society, Puducherry' by e-M.O/Cheque/D.D, to the Editor, 'Awakening'.

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अक्तूबर

१. सफलता की अपेक्षा सत्य के लिए अधिक उत्सुक होओ।

२. कठिनाइयां इसलिए आती हैं कि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएं हैं। अगर जीवन में सब कुछ आसान होता तो यह 'कुछ नहीं का' जीवन होता। चूंकि तुम्हारे रास्ते में कठिनाइयां आती हैं, उससे पता चलता है कि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएं हैं। डरो मत।

३. अगर तुम जो हो उससे सन्तुष्ट नहीं हो तो भगवान् की सहायता का लाभ उठा कर अपने-आपको बदलो। अगर तुम्हारे अन्दर बदलने का साहस नहीं है तो अपनी नियति के आगे झुक जाओ और चुप रहो। लेकिन तुम जिन परिस्थितियों में हो उनके बारे में हमेशा शिकायत करते रहना और उन्हें बदलने के लिए कुछ न करना तुम्हारे समय और तुम्हारी ऊर्जा की बरबादी है।

४. कभी चिन्ता न करो।
तुम जो करो सच्चाई के साथ करो और परिणाम भगवान् की देख-रेख में छोड़ दो।

५. जो कुछ तुम्हें नीचे खींचता हो उससे सावधान। किसी निम्नतर वृत्ति के आगे न झुको। भगवान् के लिए अपनी अभीप्सा को अक्षुण्ण बनाये रखो।

६. जीवन के प्रत्येक क्षण तुम्हें भागवत कृपा और निजी सन्तुष्टि के बीच चुनाव की उपस्थिति में खड़ा किया जाता है।

७. तुम्हें काम भगवान् के प्रति अर्घ्य के रूप में करना चाहिये और उसे अपनी 'साधना' का अंग मानना चाहिये। उस भाव के साथ काम के स्वरूप का कोई महत्त्व नहीं, और तुम आन्तरिक उपस्थिति से सम्पर्क खोये बिना कोई भी काम कर सकते हो।

८. तुम जो काम करते हो उसे पूरी सच्चाई के साथ भरसक पूर्णता से करना निश्चय ही भगवान् की सेवा के सबसे अच्छे तरीकों में से एक है।

९. ... जब तक तुम अपने हृदय में शान्ति न पा लो तब तक कहीं भी शान्ति न पा सकोगे।

१०. सरल और शान्त हृदय और स्थिर मन के साथ अपना काम जारी रखो। अभीप्सा आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे आयेगी।

११. श्रीअरविन्द कहते हैं कि मनुष्य अपने बारे में जो सोचता है वही बन जाता है।

१२. वाद-विवाद प्रायः निष्फल और निष्प्रयोजन होते हैं। अगर हर एक पूर्ण सच्चाई, ईमानदारी और सद्भावना से व्यक्तिगत प्रयास करे तो काम के लिए सबसे अच्छी परिस्थितियां प्राप्त हो जायेंगी।

१३. हर व्यक्ति की अपनी त्रुटियां होती हैं। निश्चय ही अपने विचारों में उन पर जोर देने से व्यक्ति उनसे मुक्त होने में कोई सहायता नहीं पाता।

१४. अपनी त्रुटियों के बारे में अभिज्ञ होना महान् प्रगति का लक्षण है।

१५. प्रगति के लिए अभीप्सा भी होनी चाहिये : तुम जो हो, तुम जैसे हो, तुम जो कुछ करते हो, जो जानते हो या समझते हो कि तुम जानते हो, उन सबसे सन्तुष्ट न रह कर किसी अधिक अच्छी वस्तु के लिए, अधिक अच्छे के लिए, महानतम प्रकाश, बृहत्तर चेतना, अधिक सच्चे सत्य और वैश्व सद्भावना के लिए निरन्तर अभीप्सा करते रहना चाहिये।

१६. जीवन में तुम कुछ करना चाहते हो तो तुम्हें अपने-आपको अनुशासन में रखना होगा।

१७. सच्ची भावना से किया गया कार्य ध्यान होता है।

१८. लोग जिन्हें महान् कार्य कहते हैं उन्हें मिथ्या गर्व और अभिमान के साथ करने की अपेक्षा बर्तन धोते हुए या खाना परोसते हुए अपने-आपको पूरी तरह भगवान् को दे सकने पर तुम भगवान् के अधिक निकट पहुंच सकते हो।

१९. चिन्ता मत करो, केवल अपने अन्दर और अधिक अच्छा करने के संकल्प को हमेशा बनाये रखो।

२०. तुम्हारा लक्ष्य ऊंचा और विस्तृत, उदार और निष्काम होना चाहिये। इससे तुम्हारा जीवन तुम्हारे और दूसरों के लिए भी मूल्यवान् बन जायेगा।

२१. प्रयास ही आनन्द देता है, जो मनुष्य प्रयास नहीं कर सकता उसे कभी

आनन्द नहीं मिल सकता। तत्त्वतः आलसी लोगों को कभी आनन्द नहीं मिलता... प्रयास सत्ता को इतना स्पन्दित करता है कि तुम आनन्द का अनुभव कर पाते हो।

२२. अगर तुम, चाहे कुछ भी क्यों न हो, सीधा जाने का निश्चय करो और रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को सहने और बिना दुर्बलता और अप्रिय प्रतिक्रिया के उनका सामना करो तो तुम बहुत-सी कठिनाइयों से बच जाओगे।

२३. हमेशा त्रुटियों और गलत प्रवृत्तियों को ही देखते रहने से अवसाद आता है और श्रद्धा की हिम्मत टूटती है। वर्तमान के अंधेरे की ओर कम देखो, अपनी आंखें ज्यादातर आने वाले प्रकाश की ओर रखो। श्रद्धा, प्रसन्नता, अन्तिम विजय में विश्वास, ये चीजें हैं जो सहायता करती हैं और प्रगति को अधिक आसान और तेज बनाती हैं।

२४. अभीप्सा हमेशा करो परन्तु ज्यादा शान्ति के साथ, अपने-आपको बड़ी सरलता से पूरी तरह भगवान् की ओर खोलते हुए अभीप्सा करो।

२५. अपनी कठिनाइयों को भूल जाओ। केवल भागवत कार्य करने के लिए उनके अधिकाधिक पूर्ण यन्त्र बनने के बारे में सोचो और भगवान् तुम्हारी सारी कठिनाइयों को जीत कर तुम्हें रूपान्तरित कर देंगे।

२६. जब कठिनाइयां तुम्हें घेर लें तो यह जानो कि भागवत कृपा तुम्हारे साथ है।

२७. अपने-आप सच्चा बनने के लिए यह जरूरी नहीं है कि तुम औरों के सच्चा बनने का इन्तजार करो।

२८. अचञ्चल रहना और एकाग्र होना, ऊपर से शक्ति को अपना काम करने देना, यह किसी भी बीमारी और हर एक बीमारी को ठीक करने का सबसे निश्चित तरीका है। अविचल श्रद्धा और मजबूत संकल्प के साथ अगर इसे समय पर और पर्याप्त समय के लिए किया जाये तो ऐसी कोई भी बीमारी नहीं जो इसका प्रतिरोध कर सके।

२९. प्रगति का कोई अन्त नहीं है और हर रोज, तुम जो कुछ करते हो उसे ज्यादा अच्छी तरह करना सीख सकते हो।

३०. अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा आदर किया जाये तो हमेशा आदरणीय रहो।

अच्छा करने की कोशिश करो और यह कभी न भूलो कि भगवान् तुम्हें हर जगह देखते हैं।

३१. विश्व के आश्चर्यों का कहीं अन्त नहीं है।

हम अपने छोटे-से अहंकार की सीमाओं से जितना अधिक मुक्त होते चलें, उतना ही अधिक ये आश्चर्य अपने-आपको हमारे आगे प्रकट करेंगे।

एक क्षण के लिए भी यह न भूलो कि यह सब स्वयं भगवान् ने अपने अन्दर से बनाया है। वे केवल हर चीज में उपस्थित ही नहीं हैं अपितु स्वयं हर चीज हैं। भेद केवल अभिव्यञ्जना और अभिव्यक्ति में है। अगर तुम यह भूल जाओ तो सब कुछ खो बैठोगे।

एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार

(तारा जौहर कई वर्षों तक श्रीअरविन्दाश्रम के शारीरिक-शिक्षण विभाग में छोटे बच्चों (हरित दल) की कप्तान रहीं।)

मधुर मां, चैत्य परिवर्तन और आध्यात्मिक परिवर्तन में क्या फर्क है?

चैत्य परिवर्तन ऐसा परिवर्तन है जो अन्तरस्थ भगवान् के साथ तुम्हारा सम्पर्क साध देता है, जो भगवान् हर सत्ता के केन्द्र में हैं, चैत्य सत्ता उनका कोष और उनकी अभिव्यक्ति है। चैत्य परिवर्तन द्वारा तुम व्यक्तिगत भगवान् से वैश्व भगवान् में और अन्त में परात्पर में चले जाते हो।

आध्यात्मिक परिवर्तन तुम्हें सीधा परम प्रभु के सम्पर्क में ला देता है।

९ सितम्बर १९५९

मधुर मां, हम अपने चैत्य व्यक्तित्व को कैसे विकसित कर सकते हैं?

जीवन के सभी अनुभवों द्वारा चैत्य व्यक्तित्व रूप लेता, बढ़ता, विकसित होता और अन्त में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है।

विकास की यह प्रक्रिया अथक रूप से अनगिनत जन्मों तक चलती रहती है, और अगर तुम उसके बारे में सचेतन नहीं हो तो इसका कारण यह है

कि तुम अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन नहीं हो—क्योंकि वही अनिवार्य आरम्भ-बिन्दु है। अभ्यन्तरीकरण और एकाग्रता द्वारा तुम्हें अपनी चैत्य सत्ता के सचेतन सम्पर्क में आना होता है। इस चैत्य सत्ता का बाहरी सत्ता पर हमेशा प्रभाव रहता है, परन्तु यह प्रभाव केवल एकदम से अपवादिक अवसरों को छोड़ कर प्रायः हमेशा गुह्य रहता है, इसे न तो देखा, न समझा और न अनुभव किया जा सकता है।

इस सम्पर्क को मजबूत बनाने के लिए, और यदि सम्भव हो तो सचेतन चैत्य व्यक्तित्व के विकास में सहायक होने के लिए, एकाग्र होते समय तुम्हें उसकी ओर मुड़ना, उसे जानने और अनुभव करने के लिए अभीप्सा करनी चाहिये, उसके प्रभाव को ग्रहण करने के लिए अपने-आपको खोलना, और हर बार उससे संकेत मिलने पर बहुत सावधानी और सच्चाई के साथ उसका अनुसरण करना चाहिये। चैत्य सत्ता के विकास की आवश्यक शर्तें हैं —एक महान् अभीप्सा में जीना, अन्दर से शान्त रहने के लिए सावधानी बरतना और जहां तक बन सके ऐसा ही बने रहना, अपनी सत्ता की सभी क्रियाओं में पूर्ण सच्चाई स्थापित करना। १० सितम्बर १९५९

मधुर मां, हम ऊर्जा को बाहर से अपने अन्दर कैसे खींच सकते हैं?

वह इस पर निर्भर करता है कि हम किस तरह की ऊर्जा को आत्मसात् करना चाहते हैं; क्योंकि सत्ता के हर क्षेत्र के अनुरूप ऊर्जा होती है। अगर यह भौतिक ऊर्जा है तो हम इसे मुख्यतः श्वास-प्रश्वास द्वारा आत्मसात् करते हैं, और जो कुछ श्वास-प्रश्वास को ज्यादा अच्छा और आसान बनाता है, वह साथ-साथ भौतिक ऊर्जा को आत्मसात् करने की शक्ति को भी बढ़ाता है।

मगर और भी कई तरह की ऊर्जाएं हैं या फिर उस 'ऊर्जा' के बहुत सारे रूप हैं जो एकमेव और विश्वव्यापी है।

और हम श्वास के विविध यौगिक व्यायाम, ध्यान, जप और एकाग्रता द्वारा अपने-आपको 'ऊर्जा' के इन विविध रूपों के साथ सम्पर्क में ला सकते हैं।

१० सितम्बर १९५९

मधुर मां, 'ऊर्जा' के ये अन्य रूप क्या हैं और वे हमारी साधना में कैसे सहायता देते हैं?

सत्ता के हर क्षेत्र और हर क्रिया-कलाप की अपनी ऊर्जाएं होती हैं। हम उनका वर्गीकरण सामान्यतः प्राणिक ऊर्जा, मानसिक ऊर्जा, आध्यात्मिक ऊर्जा के रूप में कर सकते हैं। आधुनिक विज्ञान हमें बतलाता है कि अन्ततः जड़-भौतिक घनीभूत ऊर्जा के सिवा और कुछ नहीं है।

चूंकि हमारा योग पूर्ण योग है, इसलिए हमारी उपलब्धि के लिए ऊर्जा के ये सब रूप और प्रकार अनिवार्य हैं।

१२ सितम्बर १९५९

मधुर मां, "मनोमय कोष के सतही रूप के सूक्ष्म भौतिक दीर्घीकरण" ('दिव्य जीवन' से) का क्या अर्थ है?

इसका मतलब है कि तुम जिस भूत को देखते हो और भूल से उसे ही विगत सत्ता मान लेते हो वह केवल उसका प्रतिबिम्ब, एक छाप है (छाया-चित्र की प्रति जैसा) जिसे सतही मानसिक रूप सूक्ष्म भौतिक में छोड़ता है; एक ऐसा प्रतिबिम्ब जो अमुक परिस्थितियों में दिखायी दे सकता है। ये बिम्ब (सिनेमा के बिम्बों की तरह) चल-फिर सकते हैं पर इनमें कोई ठोस वास्तविकता नहीं होती। इन बिम्बों को देखने वाले का भय या भाव कभी-कभी इन्हें ऐसी शक्ति या क्रिया का आभास दे देता है जो सचमुच इनमें नहीं होती। इसीलिए इनसे कभी न डरना चाहिये और इन्हें उसी सच्चे रूप में पहचानना चाहिये जो वे हैं, अर्थात्, भ्रामक आभास के रूप में।

१४ सितम्बर १९५९

मधुर मां, यह कैसे हो सकता है कि हम मन को नीरव करें, स्थिर-अचञ्चल रहें और साथ-ही-साथ अभीप्सा भी करें, तीव्रता और विस्तार भी लायें? क्योंकि जैसे ही हम अभीप्सा करते हैं तो क्या अभीप्सा करने वाला मन नहीं होता?

नहीं; अभीप्सा, विस्तार और तीव्रता हृदय से आते हैं जो भावों का केन्द्र, चैत्य का द्वार या चैत्य की ओर ले जाने वाला द्वार है।

अपने स्वभाव से मन कुतूहली और सब चीजों में रुचि रखने वाला होता है। वह देखता है, वह अवलोकन करता है, समझने और समझाने की कोशिश करता है और इस समस्त क्रिया-कलाप के साथ वह अनुभूति

को क्षुब्ध कर देता है और उसकी तीव्रता और शक्ति को कम कर देता है।

दूसरी ओर, मन जितना स्थिर और नीरव हो, उतनी ही अधिक अभीप्सा हृदय की गहराई से, अपने उत्साह की पूर्णता में उठती है।

१७ सितम्बर १९५९

मधुर मां, हम अहंकार की इच्छा-शक्ति को कैसे दूर कर सकते हैं?

इसका मतलब तो यही होता है कि अहंकार को कैसे दूर कर सकते हैं। यह केवल योग द्वारा ही किया जा सकता है। मानवजाति के आध्यात्मिक इतिहास में योग की बहुत-सी पद्धतियां रही हैं—जिनका श्रीअरविन्द ने हमारे लिए 'सिंथेसिस ऑफ योग' (योग समन्वय) में वर्णन किया है।

लेकिन अहंकार की इच्छा-शक्ति को निकाल बाहर करने से पहले, जिसमें बहुत लम्बा समय लगता है, व्यक्ति अहंकार की इच्छा-शक्ति को भागवत इच्छा-शक्ति के अर्पण करने से शुरू कर सकता है, पहले पग-पग पर और अन्ततः सतत रूप से। इसके लिए पहला कदम है यह समझ लेना कि हमारे लिए क्या अच्छा और क्या सचमुच जरूरी है इसे भगवान् हमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं—केवल हमारी आध्यात्मिक प्रगति के लिए ही नहीं बल्कि हमारे भौतिक योगक्षेम के लिए, शारीरिक स्वास्थ्य और हमारी सत्ता की क्रियाओं के समुचित क्रिया-कलाप के लिए भी।

स्वभावतः यह अहंकार की राय नहीं है, जो समझता है कि वह और सबकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानता है कि उसे क्या चाहिये और जो अपने लिए मूल्यांकन और निर्णय की स्वाधीनता का दावा करता है। लेकिन वह ऐसा इसलिए सोचता और अनुभव करता है क्योंकि वह अज्ञानी है और धीरे-धीरे तुम्हें उसे यह विश्वास दिलाना होगा कि उसका बोध और उसकी समझ सचमुच जान सकने के लिए बहुत ज्यादा सीमित हैं, कि वह अपनी कामनाओं के अनुसार ही मूल्यांकन करता है जो सत्य के अनुसार न होकर अन्धी हैं।

क्योंकि कामनाएं आवश्यकताओं की नहीं, पसन्द-नापसन्द की सूचक होती हैं।

१९ सितम्बर १९५९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २५३-५७

गरीब का पुण्य

गुजरात की राजमाता मीणलदेवी सदा दान-परोपकार में लगी रहती थीं। एक बार वे सोमनाथ जी का दर्शन करने गयीं। वे अपने साथ सवा करोड़ सोने की मोहरें ले गयी थीं। वहां पहुंच कर उन्होंने अपने भार का स्वर्ण तुलादान करवाया। अपनी माता की यात्रा के पुनीत अवसर पर उनके बेटे राजा सिद्धार्थ ने प्रजा के लाखों रुपयों का लगान माफ कर दिया। इस सबसे राजमाता मीणल को अहंकार हो गया कि उनके समान दान करने वाली कौन होगी? रात को भगवान् ने उन्हें सपने में आकर प्रेरणा दी कि सोमनाथ मन्दिर में एक बहुत ही गरीब स्त्री यात्रा करने आयी है, यदि हो सके तो उसका पुण्य मांग लो।

अगले दिन सुबह राजमाता मीणलदेवी ने सोचा, इसमें कौन-सी बड़ी बात है! मैं उस गरीब औरत को ढेर सारे रुपये देकर उसका पुण्य ले लूंगी। राजमाता ने उस सर्वाधिक गरीब स्त्री की खोज में अपने सरकारी कर्मचारी भेजे। वे यात्रा में आयी एक बहुत ही गरीब ब्राह्मणी को ले आये। राजमाता ने कहा—"बहन, तुम अपना पुण्य मुझे दे दो, उसके बदले जितना रुपया-पैसा चाहो मांग लो, मैं दे दूंगी।" उस गरीब ब्राह्मणी ने हाथ जोड़ कर मना कर दिया। इस पर राजमाता ने कहा—"तूने ऐसा क्या किया है? तेरा कौन-सा पुण्य है, मुझे बता तो सही!"

ब्राह्मणी बोली—"मैं तो गरीब ब्राह्मणी हूं। घर से यहां तक रास्ते में सैकड़ों गांव पड़े, सब जगह भीख मांगती आयी। कल तीर्थ का उपवास था, किसी पुण्यात्मा ने मुझे बिना नमक का सत्तू दिया था, उसके आधे भाग से मैंने भगवान् सोमेश्वर की पूजा की थी, उसके शेष आधे में से आधा एक अतिथि को दिया, शेष बचे सत्तू से मैंने पारण किया। राजमाता, मेरा पुण्य ही क्या है! हां, आप बहुत अधिक पुण्यवती हैं। आपकी यात्रा की खुशी में आपके योग्य बेटे ने प्रजा का लगान छुड़वा दिया, आपने अपने भार की स्वर्ण-तुलाएं भिखारियों को दान में दीं, फिर सवा करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं से शंकर भगवान् की पूजा की। इतना बड़ा पुण्य करने वाली आप मेरा छोटा-सा पुण्य क्यों चाह रही हैं? हां, यदि आप मुझ पर क्रोध न करें तो कुछ निवेदन करूं।"

राजमाता ने भरोसा दिलाया कि वे क्रोध न करेंगी। इस पर गरीब ब्राह्मणी ने कहा—"मुझे अपने संस्कारों तथा सन्तों के उपदेश से लगता है कि आपके करोड़ों रुपयों के पुण्य से मुझ दरिद्र ब्राह्मणी का पुण्य अधिक भारी है। अपने इन्हीं संस्कारों के कारण मैंने आपके रुपयों के बदले अपना स्वल्प, छोटा-सा पुण्य छोड़ना स्वीकार नहीं किया। मैंने सीखा था सम्पत्ति ज्यादा हो या कम, उसकी अपेक्षा धर्म की मर्यादा एवं नियमों की महत्ता अधिक है। मैंने सदा उनका पालन किया; दूसरे, शक्ति का सामर्थ्य होने पर भी निरन्तर क्षमा-सहनशक्ति रखना; तीसरे, उम्र कम होने पर भी व्रतों एवं नियमों का निष्ठा से पालन करना और चौथे अकिञ्चन दरिद्र होने पर भी संग्रह न करना और पूजा, दान करना। ये चारों बातें छोटी थीं, परन्तु मैंने इनका दृढ़ता से पालन किया। इसी कारण मैं अपने छोटे-से भी सच्चे, स्वार्थहीन पुण्य को बड़ी-से-बड़ी सम्पदा के बदले भी छोड़ने को तैयार नहीं हूं।"

गरीब ब्राह्मणी की इस दो टूक उक्ति से राजमाता का अहंकार चूर-चूर हो गया। बोलीं—"बहन, आप ठीक ही कहती हो।"

प्रस्तुतिः नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रार्थना

'वही चरण शरण बनें।
कटें कलुष गहन घने।
लगे हे, तुम्हीं से मन,
उर-नूपुर-मधुर रणन
तुम्हारे अजिर आंगन
मंगल के गीत गने!'

महाकवि निरालाजी की कातर प्रार्थना है कि प्रभु के चरण ही अब मेरी शरण बनें, जिससे जीवन के घने गहन कलुष कट जायें। हे प्रभु, तुम्हीं से मेरा मन लगे, मेरे हृदय में तुम्हारे नूपुरों की मधुर ध्वनि गूंजती रहे, तुम्हारे ही आंगन में मैं मंगल के गीत गाता रहूं।

हमेशा 'उनको' अपने साथ लेकर उतरता हूं

अगस्त के महीने में हम सबने महान् ओलम्पिक-खेलों का लुत्फ़ उठाया। हममें से कितने ही रात-बिरात विभिन्न खेल-कूदों को 'Live' देखने के लिए दूरदर्शन से चिपके रहे। नशा छा जाता है दुनिया पर इस दौरान। और भला क्यों और कैसे न छाये? आखिर ऐसे बेमिसाल कौशल, ऐसी कड़ी साधना के परिणाम का साक्षी तो बच्चा-बच्चा होना चाहेगा। और उन बच्चों में ही तो छिपे रहते हैं भावी 'चैम्पियन'।

तो चलिये आज हम पलट जायें २००५ में जब पुरोधा के सितम्बर अंक में हमने दो नामी 'एथलीट्स' की सच्ची घटनाएं अपने पाठकों के सामने पेश की थीं।—सं.

ये हैं दो ऐसे प्रेरक प्रसंग जो किन्हीं भी परिस्थितियों से हारे हुए व्यक्ति को न केवल खड़ा कर देते हैं बल्कि उसके सिर पर सफलता का ताज रखने का बूता भी रखते हैं। ये हैं वे पारस पत्थर जो जीवन की एकरसता से घिसे-पिटे मनुष्य के हृदय का स्पर्श कर लें तो वह खरा सोना बन जाये। और वह है—संकल्प—जीतने का संकल्प। और इसके साथ-साथ चलती है अभीप्सा —पल-पल की यह अभीप्सा कि 'आज से बेहतर हो कल'।

१९२० के ओलम्पिक खेलों में १०० मी. दौड़ के विजेता चार्ली पैडॉक बहुत अच्छे वक्ता भी थे। युवकों के आदर्श, वे सबकी आंखों का तारा थे। उनका मूल मन्त्र था—"संकल्प करो और बनो"। एक बार वे विद्यालय के बच्चों के सामने भाषण दे रहे थे। भाषण के अन्त में उन्होंने हॉल में बैठे बच्चों के सामने उंगली घुमाते हुए कहा—"कौन जानता है आज दोपहर इस सभाभवन में कोई भावी ओलम्पिक चैम्पियन न बैठा हो?" भाषण के बाद सभी बच्चों ने उन्हें घेर लिया, सवालों पर सवाल उछलने लगे। उस भीड़ में था बारह साल का एक नीग्रो बालक भी। चार्ली के भाषण से वह इतना अभिभूत हो गया था कि उसके होंठ कांप रहे थे, आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी थी। चार्ली ने उसे देखा—सींकिया, एकदम से दुबला-पतला वह बच्चा इतना कमजोर लग रहा था कि चार्ली को लगा कि किसी भी पल उसके पैर जवाब दे देंगे। चार्ली उसके पास पहुंचे, उसका हाथ थाम कर बोले—"क्या नाम है तुम्हारा?" बच्चे की हिचकी बंध गयी, चार्ली घुटनों पर बैठ गये, उसे

सीने से लगा लिया। बच्चा किसी तरह रुक-रुक कर अपने मन की बात कह पाया—"मैं कुछ भी करने को तैयार हूं, मैं बस आपके जैसा ओलम्पिक चैम्पियन बनना चाहता हूं।" चार्ली ने उसके दोनों हाथों को अपनी मुट्ठी में जोरों से दबाते हुए कहा—"बच्चे, मैं भी जब उम्र में तुमसे कुछ छोटा था, मैंने यह बात गांठ बांध ली थी। बेटे, जी-जान से मेहनत में डूब जाओ। इसी को अपना लक्ष्य बना लो और तुम्हें चैम्पियन बनने से कोई न रोक पायेगा।"

उस नीग्रो बालक की आंखों में हीरे की चमक समा गयी। चार्ली ने मन ही मन सोचा—यह मरियल, दुबला-पतला बच्चा जरूर कुछ कर दिखलायेगा। उस दिन चार्ली ने उस नीग्रो बालक के साथ-साथ उन सैकड़ों बच्चों में भी संकल्प और उत्साह का बीज बो दिया जो वहां उपस्थित थे। उस नीग्रो बालक ने अपने उस बीज को यत्नपूर्वक सींचा। गरीबी के अभिशाप से शापित जीवन की विकट परिस्थितियों से जूझते हुए, उस बच्चे ने दिन-रात, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास किसी की परवाह नहीं की। न कोई प्रशिक्षक था उसके पास, न रुपये-पैसों का कोई ज़रिया, लेकिन प्रकृति माता ने अपनी गोद उसे सौंप दी थी। वह गली-कूचों, खेत-खलिहानों, पहाड़ी इलाकों में यहां-वहां, सब जगह, अपनी धुन में दौड़ने का कठिन अभ्यास करता गया तो करता ही चला गया। अपने काम में बहुत ही व्यस्त चार्ली तो इस बच्चे के बारे में करीब-करीब भूल ही चुके थे लेकिन एक दिन जब वे किसी हाई स्कूल में भाषण देने के लिए पहुंचे तो वहां की एक अध्यापिक ने उनसे कहा—"मि. चार्ली, आप सचमुच प्रेरणा के स्रोत हैं। उस दिन आपने जिस नीग्रो बच्चे के हृदय में उत्साह का शंख फूंक दिया था वह जी-जान से मेहनत में जूटा है। दौड़ने के अभ्यास का ऐसा भूत उसके सिर पर सवार है कि आप विश्वास न करेंगे। पड़ोसी होने के नाते मैं उसकी गतिविधियों को देख रही हूं। इस्पाती संकल्प-शक्ति है उसमें। आपका आशीर्वाद जरूर सफल होगा।" भाषण के बाद चार्ली सीधा उस दुबले-पतले बच्चे से मिलने गये। दो महीने पहले का वह सिकुड़ा-सिमटा बालक आज ठोस आत्मविश्वास का छोटा-सा पुतला दीख रहा था। चार्ली को अपने घर आया देख वह बच्चा खुशी से झूम उठा, नाच उठा। चार्ली ने उसकी सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली और वह दौड़ के बाक़ायदा प्रशिक्षण में जुट गया।

समय गुजरता गया। १९३६ में वह कमजोर लड़का, जो अब बलिष्ठ,

सुन्दर जवान में रूपान्तरित हो गया था, जर्मनी के बर्लिन शहर के ओलम्पिक स्टेडियम में उतरा।

उसने चार स्वर्ण-पदक अपनी झोली में डाले!!!—१०० मी. दौड़, २०० मी. दौड़, लम्बी कूद और ४०० मी. रिले दौड़।

उसका नाम है जेसी ओएंस। ओलम्पिक खेलों का जगमगाता सूरज, दुनिया की आंखों का चहेता तारा।

बालक जेसी ओएंस के आसपास की दुनिया का कोई भी व्यक्ति सपने में भी यह सपना न ले सकता था कि कभी यह एकदम से सामान्य, गरीब, लाचार-सा मरियल बालक खेल-जगत् की बुलन्दिओं को छू लेगा, इतने सुन्दर और सुडौल सांचे में अपना शरीर ढाल लेगा कि उस श्याम-वर्ण सौन्दर्य को देख प्रत्येक दांतों तले उंगली दबा लेगा। और यह सब हुआ उस क्षण के चमत्कार से जब चार्ली पैडॉक के शब्दों की जादुई छड़ी जेसी पर फिर गयी थी। अपने गुरु चार्ली के प्रति वह चिरकृतज्ञ रहा।

सच है व्यक्ति का संकल्प उसे कहां से कहां पहुंचा देता है।

हमारी कहानी यहां खत्म नहीं होती। बर्लिन ओलम्पिक के बाद जेसी अपने घर क्लीवलैंड, ओहिओ लौटे। वहां के वासी उनके लिए पलकें बिछाये बैठे थे। जनता के प्यार और अपनत्व में जेसी सराबोर हो उठे। जहां जाते, जब जाते भीड़ की भीड़ उन्हें घेरे रहती। ऐसे ही एक अवसर पर, अब सुनिये जेसी के शब्दों में, "सबके पैरों के बीच से निकलता हुआ, भीड़ को किसी तरह चीर कर वह छोटा नीग्रो बच्चा मेरे पास आ पहुंचा। मेरा हाथ थाम उसने मुझे खींचा। मैं घुटनों के बल बैठ गया, वह बोला—"जेसी, वैसे तो मैं नौ साल का हूं लेकिन इतना दुबला-पतला हूं कि मेरे सारे दोस्त 'बोंस' (Bones) कह कर मेरी हंसी उड़ाते हैं, लेकिन मैं सबको दिखा दूंगा कि मैं बलवान् हूं, क्योंकि मैं भी तुम्हारी तरह ओलम्पिक 'चैम्पियन' बनना चाहता हूं। मैं इसके लिए **कुछ भी** करने को तैयार हूं।"

जेसी ने हू-ब-हू अपने-आपको सामने खड़ा पाया। ठीक ये ही शब्द तो उसने चार्ली से कहे थे।

जेसी ने उसे अपने सामने खींच लिया। उसके गले में अपनी दोनों बांहें डाल कर बोले—"दोस्त! जब मैं उम्र में तुमसे कुछ बड़ा और शरीर से तुम्हारे जैसा था तब मैंने भी अपने सबसे सुन्दर सपने की बात किसी से कही

थी। मेरे उन्हीं गुरु ने मुझसे कहा था कि संकल्प करो और जी-जान से जुट जाओ। तब तुम्हें 'चैम्पियन' बनने से कोई न रोक पायेगा।"

उस बच्चे की आंखें भी जगमगा उठीं। जेसी के गालों पर चुम्बन दे, वह भीड़ को चीरता हुआ अपने घर की ओर यह चिल्लाते हुए भागा—"दादी, दादी, मैं ओलम्पिक 'चैम्पियन' जरूर बनूंगा।"

शायद दादी अपनी भौतिक आंखों से न देख पायीं हों लेकिन जेसी ओएंस साक्षी थे लन्दन के वेम्बली स्टेडियम में १९४८ के ओलम्पिक खेलों के जहां एक लाख से अधिक दर्शक भी मौजूद थे। १०० मी. की दौड़ का प्रारम्भ, 'ट्रैक' पर छह सबसे तेज धावकों की भिड़न्त। गोली दगी। सारे 'स्टेडियम' में क्षण-भर के लिए सूईटपक सन्नाटा छा गया और फिर धावकों को प्रोत्साहित करने के लिए सबका समवेत उच्चघोष उठा। बाहरी, यानी छठी लेन का धावक तीर की तेजी से आगे निकल गया, सौ मीटर दौड़ का स्वर्ण पदक मिला उसे, यानी हैरीसन 'बोंस' डिलर्ड को। जेसी की आंखों के सामने कुछ वर्ष पहले का नौ साल का कमजोर लड़का उभर आया जिसने "दादी मैं ओलम्पिक 'चैम्पियन' जरूर बनूंगा" की भविष्यवाणी सिद्ध कर दिखलायी थी। दर्शकों को चीरता हुआ 'बोंस' अपने गुरु जेसी को आलींगन में भरने के लिए लालायित हो उठा।

गुरु-शिष्य के उस अपूर्व मिलन को कितनों ने अपने-अपने कैमरों में सहेज लिया। और जेसी के जीवन में सचमुच सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण तब आया जब चार साल बाद १९५२ के ओलम्पिक खेलों में 'बोंस' ने बाधा-दौड़ में स्वयं अपने गुरु जेसी के कीर्तिमान को तोड़ा। उस रोज गुरु-शिष्य के अपूर्व मिलन के समय गुरु जेसी अपने शिष्य के कानों में फुसफुसाये—"बेटे, आज का दिन मेरी जिन्दगी का सबसे सुखद दिवस साबित हुआ।"

प्रेरणा पाने की इस परम्परा का अन्त धरती पर न कभी हुआ, न होगा। हर एक क्षेत्र में यह प्रेरणा ही बन्द दरवाजे खोलती है और संकल्प-शक्ति तथा जी-तोड़ मेहनत मनुष्यों को उनके लक्ष्य की ओर सरपट दौड़ाती हैं।

निश्चित रूप से ऐसे अभियानों में कभी-कभी उन सिरजनहार से साक्षात्कार हो ही जाता है, तभी तो किसी विश्व-चैम्पियन एथलीट ने अपने किसी आत्मीय से कहा था—"मैं एथलेटिक्स के ट्रैक पर हमेशा प्रभु को अपने साथ लेकर उतरता हूं।"

—वन्दना

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: **1st October 2016**
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by **The Vatika Group** vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra
Mother of Nanak, Grade 4 and Nrita Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Sohum Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon